अठारहवाँ अध्याय

सब प्रकार के कर्मफल का त्याग ही संन्यास है। वस्तुतः जो कर्मफल का त्यागी है वही सच्चा त्यागी है। कुछ ज्ञानी कर्मों को ही त्यागना ठीक बतलाते हैं। परन्तु दूसरे कहते हैं कि यज्ञ, दान और तप तो करते ही रहना चाहिए क्योंकि यज्ञ, दान एवं तप रूप कर्म त्याग करने के योग्य नहीं है अपितु वे तो आवश्यक कर्त्तव्य है, क्योंकि बुद्धिमान पुरुषों के यज्ञ, दान एवं तप—ये तीनों ही कर्म अतः करण को पवित्र करने वाले हैं। इस प्रकार ज्ञाता, ज्ञान एवं ज्ञेय—ये तीन प्रकार की कर्म प्रेरणायें हैं और कर्त्ता, करण एवं क्रिया—ये तीन प्रकार का कर्मसंग्रह है। ये तो शुद्ध करने वाले कर्म हैं। इनका त्याग उचित नहीं है। परन्तु मोहवश उनका यदि कोई त्याग कर देता है तो वह त्याग तमोगुणी त्याग है। कर्मफल का त्याग करके कर्त्तव्य भाव से जो कर्म किया जाता है वह सात्विक त्याग है। सात्विक त्यागी दुःखदायी कर्मों से घबराता नहीं है और सुखदायी कर्मों से प्रसन्न नहीं होता है। कर्मों का परित्याग तो शरीरधारी के लिये असंभव है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति एक क्षण भी कर्मों के बिना नहीं रह सकता है।

इस प्रकार जो कर्म शास्त्र विधि से नियत किया गया है और कर्तापन को छोड़कर फलरहित हो जाता है वह सात्विक कर्म है परन्तु जो कर्म भोगों के लिये और अहंकार युक्त किया जाता है वह राजसकर्म है। इस प्रकार जो कर्म हानि, हिंसा को न विचार कर अज्ञान से किया जाता है वह तामस कर्म है। इस संसार की सारी वस्तुएं सात्विक, राजसिक एवं तामसिक हैं।

इसी प्रकार सुख भी तीन प्रकार के होते हैं जो सुख आरम्भ में विष की भाँति और अंत में अमृत की भाँति है जिसे आत्मा व बुद्धि को शांति मिलती है वह सात्विक सुख है। इन्द्रिय सुख जो आरम्भ में अमृत और अंत में विष की भाँति होते हैं वे राजस सुख है। इसके विपरीत जो सुख आरंभ में आत्मा को केवल मोह, नींद, आलस्य एवं सुस्ती में डालते हैं वे तामस सुख हैं।

इसमें चारों वर्णों के धर्म का भी वर्णन है। अपना धर्म चाहे कैसा भी हो उसी को अपनाना ठीक है न कि दूसरे के धर्म को स्वीकार करना। सभी कर्मों में दोष तो रहते ही हैं। बिना धुएँ के क्या कभी अग्नि हो सकती है? अतः प्रत्येक कर्म अनासक्ति से करना चाहिये।

अंत में गीतासार यह है कि परमात्मा का अनन्य भक्त वही है जो उसकी शरणमें रहता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्मफल अवश्य भुगतना पड़ता है। परन्तु प्रभु शरण से ऐसा करना सरल हो जाता है।

अंततः यह कहना उचित होगा कि संसार में समस्त ज्ञान का भण्डार वेद हैं, वेदों का सार उपनिषदें हैं, उपनिषदों का सार गीता है, गीता का सार गीता का अठारहवाँ अध्याय है। अठारहवें अध्याय का सार इस अध्याय का 66वाँ श्लोक है और उसका सार प्रभु की अनन्य शरणागति है क्योंकि इस भगवत्निष्ठा के उल्लेख में योगिराज कृष्ण ने अपने उपदेश का उपसंहार किया है। वस्तुतः गीता एक गूढ़ रहस्यमय ग्रंथ है जिस का बार-बार अध्ययन करने से इसके श्लोकों के गूढ अर्थ समझे जाते हैं और दिव्य आनंदानुभूति होती है। इसी कारण जयदयाल गोयन्का जी गीता की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं–

> **शास्त्रों का अवलोकन और महापुरुषों के वचनों का श्रवण करके मैं इस निर्णय पर पहुँचा कि संसार में श्रीमद्भगवत्गीता के समान कल्याण के लिये कोई भी उपयोगी ग्रंथ नहीं है। गीता में ज्ञानयोग, ध्यानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि जितने भी साधन बतलाये गये हैं उनमें से कोई भी साधन अपनी श्रद्धा, रुचि और योग्यता के अनुसार करने से मनुष्य का शीघ्र कल्याण हो सकता है।**

अतएव उपर्युक्त साधनों का तथा परमात्मा का तत्त्व रहस्य जानने के लिये महापुरुषों का और उनके अभाव में उच्चकोटि के साधकों का श्रद्धा, प्रेमपूर्वक संग करने की विशेष चेष्ठा करते हुये गीता का अर्थ और भाव सहित मनन करने तथा उसके अनुसार जीवन बनाने के लिये प्राण पर्यन्त प्रयत्न करना चाहिये।

स्वामी गीतानंद (वीरजी) ने इसके विषय में कितना सुन्दर लिखा है–

गीता के ये श्लोक हैं ज्यों नाविक के तीर।
देखन में छोटे लगें घाव करें गंभीर।।

अतः फल की इच्छा से प्रेरित सारे कर्मों का परित्याग करना ही संन्यास है, जबकि कर्मफल को भोगने की सारी दुश्चिन्ताओं एवं उद्विग्नताओं को समाप्त कर देना ही त्याग है। वस्तुतः गीता स्वयं योग का सम्पूर्ण सारसंग्रह है।

1. **संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।**
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ।।

हृषीकेश ! फ़रमाइये अब ज़रा,
है संन्यास और त्याग में फ़र्क क्या ?
कवी-दस्त केशी के कातल मुझे,
असूल उनके क्या हैं बता दीजिये ?

शब्दार्थ —संन्यासस्य—संन्यास का; महाबाहो—हे विशाल भुजाओं वाले; तत्त्वम्—सत्य को; इच्छामि—चाहता हूँ; वेदितुम्—जानने के लिये; त्यागस्य—त्याग का; च—भी; हृषीकेश—हे इन्द्रियों के स्वामी; पृथक्—अलग रूप से; केशिनिषूदन—हे केशी दैत्य को मारने वाले कृष्ण ।

कविदस्त—महाबाहो ।

भावार्थ —हे महाबाहु ! हे हृषीकेश ! हे केशिनिषूदन कृष्ण ! मैं 'संन्यास' तथा 'त्याग' का पृथक्-पृथक् तात्त्विक रूप, यथार्थ रूप जानना चाहता हूँ ।

2. **काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः ।**
सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ।।

यह कहते हैं दाना कि ख़्वाइश के काम,
उन्हें छोड़ने का है संन्यास नाम ।
मगर त्याग में हो न तर्क-ए अमल,
करे सब अमल छोड़ कर उनके फल ।।

शब्दार्थ —काम्यानाम्—इच्छितों का; कर्मणाम्—कर्मों का; न्यासम्—छोड़ना; संन्यासम्—संन्यास; कवयः—क्रान्तबुद्धि वाले; विदुः—जानते हैं; सर्वकर्मफलत्यागम्—सब कर्मों के फलों के त्याग को; प्राहुः—कहते हैं; त्यागम्—त्याग को; विचक्षणाः—अनुभवी ।

दाना—बुद्धिमान्; तर्क-ए अमल—कर्म-त्याग ।

भावार्थ —बुद्धिमान लोग काम्य कर्मों के त्याग को 'संन्यास' कहते हैं, और सब कर्मों के फलों के त्याग को विद्वान् लोग 'त्याग' कहते हैं ।

3. **त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः ।**
यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यमिति चापरे ।।

कई मर्द दाना कहें छोड़ काम,
कि कर्मों में पिन्हाँ जर्र है मदाम ।
कई यूँ कहें यह सआदत न जाये,
इबादत सख़ावत रियाज़त न जाये ।।

शब्दार्थ – त्याज्यम्–छोड़ने योग्य; दोषवत्–दोष से युक्त; इति–इस प्रकार से; एके–एक पक्ष वाले; प्राहुः–कहते हैं; मनीषिणः–विद्वान् लोग; यज्ञदानतपःकर्म–यज्ञ, दान, तप ये जो कर्म हैं; त्याज्यम्–छोड़ने चाहियें; इति–ऐसा; च–और; अपरे–दूसरे पक्ष वाले लोग ।

पिन्हाँ–छिपा हुआ; जर्र–हानि; मदाम–सदा; सआदत–सुअवसर; इबादत–यज्ञ; सख़ावत–दान; रियाजत–तप ।

भावार्थ – कुछ मनीषियों का कथन है कि 'कर्म' सदा दोषयुक्त होता है, इसका 'त्याग' कर देना चाहिये; दूसरे लोग कहते हैं कि 'यज्ञ', 'दान', 'तप' और 'कर्म' का कभी त्याग नहीं करना चाहिये ।

4. **निश्चयं मे शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम ।**
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः ।।

मगर मुझ से भारत के सरदार सुन,
मेरा कौल मेरे परस्तार सुन ।
कि इस त्याग के भी हैं इकसाम तीन,
गुणों से हुए इसके भी नाम तीन ।।

शब्दार्थ– निश्चयम्–निश्चय को; मे–मेरे; शृणु–सुन; तत्र–उस; त्यागे–त्याग में; भरतसत्तम–हे भरतकुल में श्रेष्ठ अर्जुन; हि–निश्चय से; पुरुषव्याघ्र–हे पुरुषों में श्रेष्ठ; त्रिविधः–तीन प्रकार का; प्रकीर्तितः–बताया गया है ।

कौल–निश्चय; परस्तार–उपासक; इकसाम–प्रकार ।

भावार्थ – हे भरतकुल में श्रेष्ठ अर्जुन! इस त्याग के विषय में मेरा निर्णय सुन! हे पुरुषव्याघ्र–पुरुषों में व्याघ्र के समान तेजस्वी अर्जुन–'त्याग' सत्त्व, रज, तम–इन तीन प्रकार का बताया गया है ।

5. **यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।**
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ।।

तू यज्ञ और सख़ावत रियाज़त न छोड़,
ये तीनों हैं ऐन-ए सआदत न छोड़ ।
कि यज्ञ और सख़ावत रियाज़त के काम,
करें पाक दाना के दिल को मदाम ।।

शब्दार्थ – यज्ञदानतपःकर्म–यज्ञ, दान और तप जो ये कर्म हैं; न–नहीं; त्याज्यम्–छोड़ना चाहिये; कार्यम्–करना चाहिये; एव–ही; तत्–उसको; यज्ञः–यज्ञ; दानम्–दान; तपः–तप; च–और; पावनानि–पवित्र करने वाले होते हैं; मनीषिणाम्–महात्माओं को ।
सखावत–दान; रियाज़त–तप; ऐन-ए सआदत–नितान्त सुअवसर; मदाम–सदा ।

भावार्थ – 'यज्ञ' - 'दान'- 'तप' - 'कर्म' –त्याज्य नहीं हैं, इन्हें तो करना ही चाहिये । 'यज्ञ'-'तप'-'दान' तो महात्माओं को भी पवित्र कर देते हैं ।

6. **एतान्यपि तु कर्माणि संग त्यक्त्वा फलानि च ।**
कर्त्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ।।

यही फ़ैसला मेरे नज़दीक है,
यही राय पुख़ता है और ठीक है ।
कि यज्ञ और सख़ावत रियाज़त भी कर,
तअल्लुक रख उनसे न फ़िकर-ए समर ।।

शब्दार्थ – एतानि–इन, ये; अपि–भी; तु–तो; कर्माणि–कर्म; संगम्–आसक्ति को; त्यक्त्वा–छोड़कर; फलानि–फलों को; च–और; कर्त्तव्यानि–करने चाहियें; इति–यह; मे–मेरा; पार्थ–हे अर्जुन; निश्चितम्–निश्चित; मतम्–मत; उत्तमम्–श्रेष्ठ ।
फ़ैसला–निश्चय; पुख़ता–दृढ़; तअल्लुक–आसक्ति; फ़िकर-ए समर–फल की आकांक्षा ।

भावार्थ – इन सारे कार्यों को किसी प्रकार की आसक्ति या फल की आशा के बिना सम्पन्न करना चाहिये । यही मेरा अन्तिम मत है ।

7. **नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।**
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ।।

कि जो काम सर पर तेरे फ़र्ज है,
न छोड़ उसको यह फ़र्ज इक कर्ज़ है ।
यह तर्क इक फ़रेब-ए जहालत समझ,
यह त्याग इक तमोगुण की सूरत समझ ।।

शब्दार्थ –नियतस्य–निश्चित, शास्त्र-विहित; तु–तो; संन्यासः–त्याग; कर्मणः–कर्म का; न–नहीं; उपपद्यते–उचित है, सम्भव है; मोहात्–मूढता से; तस्य–उसका; परित्यागः–परित्याग, छोड़ना; तामसः–तामस; परिकीर्तितः–कहा गया है ।

तर्क–त्याग; फ़रेब–धोखा; जहालत–अज्ञानता ।

भावार्थ –जो कर्म 'नियत' कर दिये गये हैं, उनका त्याग उचित नहीं है। अज्ञानवश उनका त्याग कर देना 'तामस-कर्म' कहलाता है ।

8. **दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत् ।**
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ।।

वो बुज़दिल जो तकलीफ़ के खौफ़ से,
जो करने का है काम उसे त्याग दे ।
समझ ले रजोगुण वो तर्क-ए अमल,
न हासल हो इस त्याग से कोई फल ।।

शब्दार्थ –दुःखम्–दुःखदायी; इति–इस प्रकार से; एव–ही; यत्–जो; कर्म–कर्म; कयक्लेशभयात्–काया को कष्ट होने के भय से; त्यजेत्–छोड़ दे; सः–वह; कृत्वा–करके; राजसम्–रजोगुणी; त्यागम्–त्याग को; न–नहीं; एव–ही; त्यागफलम्–त्याग के फल को; लभेत्–प्राप्त करता है ।

बुज़दिल–कायर; तर्क-ए अमल–कर्म-त्याग; हासल–प्राप्त ।

भावार्थ –जो व्यक्ति किसी 'नियत' कर्म का इसलिये त्याग कर देता है कि उसके करने में उसे मानसिक दुःख होता है या शारीरिक कष्ट होता है, या कष्ट की सम्भावना है, भय है, वह 'राजस-त्याग' करता है, और उसे 'त्याग' का फल नहीं मिलता ।

9. **कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन ।**
संग त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः ।।

करें फ़र्ज़ को फ़र्ज़ गर जान कर,
तअल्लुक हो उससे न फ़िकर-ए समर ।
जो असली है अर्जुन यही त्याग है,
कि ऐन-ए सतोगुण यही त्याग है ।।

शब्दार्थ –कार्यम्–करना चाहिये; इति–ऐसा; एव–ही; यत्–जो; नियतम्–नियत है; क्रियते–किया जाता है; संगम्–आसक्ति को; त्यक्त्वा–छोड़कर; पालम्–फल को; च–भी; एव–निश्चय ही; सः–वह; त्यागः–त्याग; सात्त्विकः–सात्त्विक; मतः–माना गया है ।

तअल्लुक–आसक्ति; फ़िकर-ए समर–फल-आकाँक्षा; ऐन–बिल्कुल ।

भावार्थ –हे अर्जुन! जो व्यक्ति 'नियत' कर्म को अपना कर्त्तव्य समझ कर, करता है, और उस कर्म के प्रति आसक्ति तथा फल इच्छा दोनों को छोड़ कर कर्म करता है, उसका त्याग 'सात्त्विक-त्याग' माना जाता है ।

10. **न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते ।**
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ।।

जो त्यागी सतोगुण है और होश्यार,
शकूक अपने कर दे वो सब तार-तार ।
जो हो कार-ए नाखुश तो ना-खुश न हो,
अगर कार-ए खुश हो ज़रा खुश न हो ।।

शब्दार्थ –न–नही; द्वेष्टि–द्वेष करता है; अकुशलम्–अप्रिय; कर्म–कर्म को; कुशले–प्रिय में; न–नहीं; अनुषज्जते–आसक्त होता है; त्यागी–कर्मफल को त्याग करने वाला; सत्त्वसमाविष्टः–सत्वगुणी; मेधावी–बुद्धिमान्; छिन्नसंशयः–संशयरहित ।

शकूक–शंकायें; तार-तार–छिन्न-भिन्न; कार-ए नाखुश–अनिष्ट; कार-ए खुश–इष्ट ।

भावार्थ –जो व्यक्ति किसी अप्रिय कर्म से घृणा नहीं करता, किसी प्रिय कर्म में अनुरक्त नहीं होता, वह त्यागी है, सत्त्वगुणी है, मेधावी है, संशय से रहित है ।

11. **न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुँ कर्माण्यशेषतः ।**
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ।।

कि दुनियाँ में जितने हैं तन के मर्की,
करें तर्क सब काम मुमकिन नहीं ।
हैं त्यागी वही तार्क-ए बाअमल,
अमल जो करें छोड़कर उनके फल ।।

शब्दार्थ– नहि–नहीं ही; देहभृता–देहधारी से; शक्यम्–सम्भव है; त्यक्तुम्–छोड़ने के लिये; कर्माणि–कर्मों को; अशेषतः–पूर्णतः से; यः–जो; तु–तो; कर्मफलत्यागी–कर्म की फलेच्छा को त्यागने वाला है; सः–वह; त्यागी–त्यागी; इति–इस प्रकार से; अभिधीयते–कहलाता है ।

मुमकिन–सम्भव; तार्क-ए बा अमल–कर्ता-अकर्ता ।

भावार्थ –किसी भी देहधारी के लिये कर्मों का पूर्ण त्याग सम्भव नहीं है, परन्तु जो कर्मफल को त्याग देता है, वही त्यागी कहलाता है ।

12. **अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम् ।**
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ।।

जो त्यागी नहीं जब वो दुनियाँ से जायें,
तो मर कर वो फल तीन सूरत से पायें ।
बुरे या भले या मुरक्कब समर,
जो तारक हैं बच जायें उनसे मगर ।।

शब्दार्थ –अनिष्टम्–अप्रिय; इष्टम्–प्रिय; मिश्रम्–अनिष्ट और इष्ट–इन दोनों से मिश्रित प्रियाप्रिय; च–और; त्रिविधम्–तीन प्रकार का; कर्मणः–कर्म का; फलम्–फल; भवति–होता है; अत्यागिनाम्–जिन्होंने कर्म के फल को नहीं त्यागा है; प्रेत्य–मर कर; न–नहीं; तु–तो; संन्यासिनाम्–कर्म के फल को जिन्होंने त्याग दिया है; क्वचित्–कहीं भी ।

मुरक्कद–मिश्रित; तारक–त्यागी ।

भावार्थ – जिन्होंने कर्मफल का त्याग नहीं किया प्रिय, अप्रिय तथा प्रियाप्रिय मरने के पश्चात् कर्मों के फल मिलते हैं । लेकिन जो संन्यासी हैं उन्हें सुख-दुःख नहीं भोगना पड़ता ।

13. **पंचैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।**
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ।।

ज़बरदस्त अर्जुन समझ मुझ से अब,
कि हर काम के पाँच होंगे सबब ।
हो पाँचों से तकमील हर काम की,
कहे साँख्य का फ़लसफ़ा भी यही ।।

शब्दार्थ –पंच–पाँच; एतानि–ये, इन; महाबाहो–हे महाबाहु अर्जुन; कारणानि–कारणों को; निबोध–जान; मे–मेरे से; सांख्ये–सांख्य; कृतान्ते–सिद्धान्त में; प्रोक्तानि–कहे गये हैं; सिद्धये–सिद्धि के लिये; सर्वकर्मणाम्–सब कर्मों की ।

ज़बरदस्त–महाबाहो; सबब–कारण; तकमील–सिद्धि; फ़लसफ़ा–दर्शन ।

भावार्थ –हे महाबहु! कर्मफल जिन कारणों से मिलता है, उन कारणों को सांख्य-सिद्धान्त में बतलाया गया है सो तुम मुझसे जानो ।

14. **अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम् ।**
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम् ।।

सबब अव्वली है अमल का मकाम,
दोम आमल उसका फिर आज़ा तमाम ।
चहारम सबब सही-ओ तदबीर है,
तो पंचम सबब दस्त-ए तक़दीर है ।।

शब्दार्थ –अधिष्ठानम्–कार्य का स्थान; करणम्–साधन; च–और; पृथग्विधम्–भिन्न-भिन्न प्रकार के; त्रिविधाः–अनेक प्रकार के; च–और; पृथक्चेष्टाः–भिन्न-भिन्न चेष्टायें; दैवम्–दैव; एव–ही; अत्र–यहाँ; पंचमम्–पाँचवाँ ।

अव्वली–प्रथम; अमल का मकाम–अधिष्ठान; आमल–कर्ता; आज़ा–कारण; चहारम–चौथा; सही–चेष्टा; तदबीर–पुरुषार्थ; दस्त-ए तक़दीर–भाग्य ।

भावार्थ – (वे पाँच कारण हैं) –कार्य का स्थान, कर्ता, भिन्न-भिन्न प्रकार के साधन, भिन्न-भिन्न प्रकार की चेष्टाएँ तथा पाँचवाँ भाग्य–दैव ।

15. **शरीरवांगमनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः ।**
न्याय्यं वा विपरीतं वा पंचैते तस्य हेतवः ।।

कोई काम इन्साँ यतन से करे,
ज़बाँ से कि तन से कि मन से करे ।
रवा काम या ना-रवाँ काम हो,
इन्हीं पाँच से वो सर-इंजाम हो ।।

शब्दार्थ —शरीरवांगमनोभिः—शरीर, वाणी और मन से; यत्—जिस; कर्म—कर्म को; प्रारभते—प्रारम्भ करता है; नरः—मनुष्य; न्याय्यम्—न्यायसंगत; वा—या; विपरीतम्—विपरीत; वा—या; पंच—पाँच; एते—ये; तस्य—उनके; हेतवः—हेतु (कारण) हैं ।

रवा—उचित; न रवा—अनुचित; सर-इंजाम—पूर्ण होना ।

भावार्थ —व्यक्ति अपने शरीर, अपनी वाणी तथा अपने मन से जो भी कोई (उचित या अनुचित) कर्म आरम्भ करता है उसमें पाँच कारण होते हैं ।

16. **तत्रैवं सति कर्त्तारमात्मानं केवलं तु यः ।**
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ।।

करीन-ए खिरद फिर नहीं उसकी बात,
जो समझे है आमल फ़कते उसकी जात ।
हक़ीक़त में है वो हक़ीक़त से दूर,
वो मूरख है दानिश में जिसकी फ़तूर ।।

शब्दार्थ —तत्र—वहाँ; एवम्—इस प्रकार से; सति—होने पर; कर्त्तारम्—कर्त्ता को; आत्मानम्—स्वयं को; केवलम्—केवल; तु—तो; यः—जो; पश्यति—देखता है; अकृतबुद्धित्वात्—कुबुद्धि के कारण; न—नहीं; सः—वह; पश्यति—देखता है; दुर्मतिः—मूर्ख ।

करीन-ए ख़िरद—बुद्धिमत्ता; आमल—कर्ता; फ़कत—केवलमात्र; ज़ात—सत्ता; हक़ीक़त—यथार्थता; हक़ीक़त—परमात्मा; दानिश—बुद्धि; फतूर—विकार ।

भावार्थ —अतः जो इन पाँचों कारणों को न मान कर स्वयं को एक मात्र कर्ता मानता है वह निश्चय ही बहुत बुद्धिमान नहीं होता है और वस्तुओं को सही रूप में नहीं देख सकता है ।

17. **यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।**
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ।।

वो इन्साँ जो दिल में न रक्खे ख़ुदी,
नहीं जिसकी दानिश में आलूदगी ।
नहीं उसको कर्मों के बन्धन से काम,
वो कातल नहीं गो करे कतल-ए आम ।।

शब्दार्थ –यस्य–जिसका; न–नहीं; अहंकृतः–अहंकार से युक्त; भावः–भावना; बुद्धिः–बुद्धि; यस्य–जिसकी; लिप्यते–लिप्त होती है; हत्वा–मारकर; अपि–भी; सः–वह; इमान्–इन; लोकान्–लोगों को; हन्ति–मारता है; निबध्यते–बन्धता है ।

दानिश–बुद्धि; आलूदगी–आसक्ति; कातल–हत्या; क़तल-ए आम–हनन ।

भावार्थ –जो अहंकार की भावना से मुक्त है जिसकी बुद्धि निर्लिप्त है वह इन सब लोगों को मारता हुआ भी नहीं मारता, वह कर्मों के बन्धन में नहीं पड़ता ।

18. **ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।**
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ।।

अमल के मुहरक हैं मफ़हूम तीन,
वो हैं आलम-ओ इल्म-ओ मालूम तीन ।
वो अजज़ा है जिन पर अमल का मदार,
हैं कारिन्दा-ओ कार-ओ आलात-ए कार ।।

शब्दार्थ –ज्ञानम्–ज्ञान; ज्ञेयम्–ज्ञान का विषय; परिज्ञाता–ज्ञान का कर्ता; त्रिविधा–तीन प्रकार की; कर्मचोदना–कर्म के प्रेरक' करणम्–करण, साधन; कर्म–क्रिया; कर्ता–कर्म करने वाला; इति–ऐसे; त्रिविधः–तीन प्रकार के; कर्मसंग्रहः–कर्म के संग्रह ।

मुहरक–हेतु; मफ़हूम–जानना; आलम–ज्ञाता; इल्म–ज्ञान; मालूम–ज्ञेय; अजज़ा–भाग-विभाग; मदार–आधार; कारिन्दा–कर्ता; आलात-ए कार–करण ।

भावार्थ –कर्म की प्रेरणा देने वाले ज्ञाता, ज्ञेय तथा ज्ञान तीन अंग हैं और कर्ता, कर्म तथा इन्द्रियाँ (करण) ये तीन प्रकार के कर्मसंग्रह हैं ।

19. **ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः ।**
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि ।।

जो गुण शास्तर से करे तू नज़र,
अमल आमल और ज्ञान के राज़ पर ।
तो जिस तरह दुनियाँ में गुण तीन हैं,
यूहीं उसके इकसास सुन तीन हैं ।।

शब्दार्थ –ज्ञानम्–ज्ञान; कर्म–कर्म; च–भी; कर्त्ता–कर्त्ता; च–भी; त्रिधा–तीन प्रकार से; एव–ही; गुणभेदतः–गुणों के भेद के कारण से; प्रोच्यते–कहा जाता है; गुणसंख्याने–सत्त्व-रज-तम–इन गुणों के निरुपण में, सांख्य-शास्त्र में; यथावत्–अच्छी तरह; शृणु–सुन; तानि–उनको; अपि–भी ।

अमल–कर्म; आमल–कर्ता; अकसाम–प्रकार ।

भावार्थ –प्रकृति के तीन गुणों के अनुसार ही ज्ञान, कर्म और कर्ता के तीन-तीन भेद हैं । अब तुम मुझसे इन भेदों को सुनो ।

20. **सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ।**
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम् ।।

नज़र आये जिस ज्ञान से बरमला,
हर इक में वही हस्ती-ए ला-फ़ना ।
जो कसरत में वाहदत की पहचान है,
तो ऐन-ए सतोगुण यही ज्ञान है ।।

शब्दार्थ –सर्वभूतेषु–सब प्राणियों में; येन–जिससे; एकम्–एक को; भावम्–सत्ता को; अव्ययम्–अविनश्वर को; ईक्षते–देखता है; अविभक्तम्–अविभक्त को; विभक्तेषु–विभक्तों में; तत्–वह; ज्ञानम्–ज्ञान को; विद्धि–जान ले; सात्त्विकम्–सात्त्विक ।

बरमला–प्रत्यक्ष; हस्ती–सत्ता; लाफ़ना–अविनाशी; कसरत–नानत्व; वाहदत–एकत्व; ऐन–बिल्कुल ।

भावार्थ –जिस ज्ञान के द्वारा व्यक्ति सब भूतों में एक ही अविनाशी सत्ता को देखता है जिस ज्ञान के द्वारा व्यक्ति विभक्तों में अविभक्त को देखता है, उस ज्ञान को तू सात्त्विक-ज्ञान समझ ।

21. **पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ।**
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ।।

नज़र आये कसरत में कसरत अगर,
कि सब हस्तियाँ हैं जुदा सर-बसर ।
जो कसरत में वाहदत से अनजान है,
रजोगुण उस इन्सान का ज्ञान है ।।

शब्दार्थ –पृथक्त्वेन–पृथक्ता से; तु–तो; यत्–जो; ज्ञानम्–ज्ञान; नानाभावान्–अनेकविध भावों को; पृथग्विधान्–अलग-अलग प्रकार के; वेत्ति–जानता है; सर्वेषु–सब ही में; भूतेषु–जीवों में; तत्–वह; ज्ञानम्–ज्ञान को; विद्धि–जान; राजसम्–राजस ।
कसरत–नानत्व; सरबसर–बिल्कुल; वाहदत–एकत्व ।

भावार्थ –जिस ज्ञान से कोई व्यक्ति विभिन्न शरीरों में भिन्न-भिन्न प्रकार का जीव देखता है उसे तू राजसिक ज्ञान जान ।

22. **यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम् ।**
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ।।

अगर जुज़्व में दिल लगाने लगे,
इसी जुज़्व को कुल बताने लगे ।
तो दानिश है कोता, नज़र तंग है,
तमोगुण इसी ज्ञान का रंग है ।।

शब्दार्थ –यत्–जो; तु–तो; कृत्स्नवत्–पूर्ण रूप से; एकस्मिन्–एक ही में; कार्ये–कार्य में; सक्तम्–लगा हुआ है; अहैतुकम्– युक्ति-शून्य; अतत्त्वार्थवद्–वास्तविकता के ज्ञान से रहित; अल्पम्–अपूर्ण; च–और; तत्–वह; तामसम्–तामस; उदाहृतम्–कहा गया है ।
जुज्व–अंश; दानिश–बुद्धि; कोता–संकीर्ण ।

भावार्थ –वह ज्ञान, जिससे मनुष्य किसी एक प्रकार के कार्य को, जो अति तुच्छ है, सब कुछ मान कर, सत्य को जाने बिना उसमें लिप्त रहता है, तामसी कहा जाता है ।

23. नियतं संगरहितमरागद्वेषतः कृतम् ।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत् तत्सात्त्विकमुच्यते ।।

अमल वो जो लाजम है और बे-लगाओ,
न रग़बत न नफ़रत का जिसमें सुभाओ ।
न हो फल की ख़्वाइश का जिसमें खलल,
यही है यही है सतोगुण अमल ।।

शब्दार्थ –नियतम्–नियत; संगरहितम्–आसक्ति रहित; अरागद्वेषतः– राग रहित; कृतम्–किया गया है; अफलप्रेप्सुना– फलेच्छा से रहित के द्वारा; कर्म–कर्म; यत्–जो है; तत्–वह; सात्त्विकम्–सात्त्विक; उच्यते–कहलाता है ।

लाज़म–नियत; बे-लगाओ–निरासक्त; रग़बत–राग; नफ़रत–द्वेष; ख़लल–विकार ।

भावार्थ– वह कर्म, जो 'नियत' है, आसक्ति के बिना और राग-द्वेष के बिना किया जाता है, जिस कर्मफल को चाह के बिना किया जाता है । ऐसा कर्म सात्त्विक कहलाता है ।

24. यत्तु कामेप्सुना कर्म साहंकारेण वा पुनः ।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ।।

मगर वो अमल जिसमें फल का हो शौक,
रहे लज़्ज़त-ओ कामरानी का ज़ौक ।
ख़ुदी की नुमाइश हो और दौड़-धूप,
यह समझो अमल का रजोगुण है रूप ।।

शब्दार्थ –यत्–जो; तु–तो; कामेप्सुना–कामनाओं की इच्छा वाले के द्वारा; कर्म–कार्य; साहंकारेण–अहंकार से युक्त; वा–या; पुनः–फिर; क्रियते–किया जाता है; बहुलायासम्–कठिन परिश्रम से; तत्–वह; राजसम्–राजस; उदाहृतम्–कहा जाता है ।

लज़्ज़त–खुशी; कामरानी–सफलता; ज़ौक–उत्सुकता; ख़ुदी–अहंकार; नुमाइश–दिखाना ।

भावार्थ –परन्तु जो कर्म फल की प्राप्ति की इच्छा वाले व्यक्ति द्वारा, अहंकार की भावना से प्रेरित होकर किया जाता है, जिसमें बहुत परिश्रम लगता है, ऐसा कर्म राजस-कर्म कहलाता है ।

25. **अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम् ।**
मोहदारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ।।

फ़रेब-ए नज़र से करे काम अगर,
न ही फ़िकर-ए इमकान-ओ इंजाम अगर ।
न हो जिसमें इज़ा-ओ नूकसाँ पे ग़ौर,
तमोगुण अमल के यही बस हैं तौर ।।

शब्दार्थ –अनुबन्धम्–परिणाम् को; क्षयम्–नाश को; हिंसाम्–हिंसा को; अनवेक्ष्य–भावी परिणाम पर विचार किये बिना; च–और; पौरुषम्–सामर्थ्य को; मोहात्– मोह के कारण; आरभ्यते–आरम्भ किया जाता है; यत्–जो; तत्–वह; तामसम्–तामस; उच्यते–कहलाता है ।

फ़रेब–मायिक; इमकान–अनुबन्ध; इंजाम–अन्त; इज़ा–लाभ; नुकसाँ–हानि; तौर–स्वरूप ।

भावार्थ –जो कर्म परिणाम हानि, हिंसा और सामर्थ्य को न विचार कर केवल अज्ञान से आरम्भ किया जाता है वह तामसी कहाता है ।

26. **मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।**
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते ।।

तअल्लुक से बाला खुदी से बरी,
इरादे का मज़बूत दिल का कवी ।
बराबर हैं जिसके लिये हार जीत,
वो आमल सतोगुण की रखता है रीत ।।

शब्दार्थ –मुक्तसंगः–आसक्तिरहित; अनहंवादी–मिथ्या से रहित अहंकार; धृत्युसाहसमन्वितः–धैर्य और उत्साह से युक्त; सिद्ध्यसिद्ध्योः–सफलता और असफलता दोनों में ही; निर्विकारः–विकाररहित; कर्त्ता–कर्ता; सात्त्विकः–सात्त्विक; उच्यते–कहलाता है ।

बाला–रहित; कवी–दृढ़ ।

भावार्थ –जो कर्ता आसक्ति से मुक्त है, जो अहंकार की बातें नहीं करता, जो धैर्य और उत्साह से युक्त है, जो सफलता एवं विफलता में निर्विकार रहता है, वह कर्ता सात्त्विक कहलाता है ।

27. **रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्कोऽशुचिः ।**
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ।।

जो तालिब है फल का हवस-नाक है,
जो लोभी है जालिम है ना-पाक है ।
खुशी से जो खुश हो जो ग़म से मलूल,
वो आमल रजोगुण के बरते असूल ।।

शब्दार्थ —रागी—राग वाला; कर्मफलप्रेप्सुः—कर्म के फल की इच्छा वाला; लुब्धः—लोभी; हिंसात्मकः—हिंसात्मक वृत्तिवाला; अशुचिः—अपवित्र; हर्षशोकान्वितः—हर्ष और शोक से युक्त; कर्त्ता—कर्ता; राजसः—राजस; परिकीर्तितः—कहा गया है ।

तालिब—आकाँक्षी; हवस-नाक—लोभी; ज़ालिम—हिंसक; ना-पाक—अपवित्र; मलूल—दुःखी ।

भावार्थ —जो कर्ता राग से, आसक्ति से प्रेरित है, जो अपने कर्मों का फल पाने के लिए उत्सुक रहता है, जो लोभी है, जिसका स्वभाव हिंसा करने का है, जो अपवित्र है, जो हर्ष और शोक से लिपायमान है, वह कर्ता राजसिक कहलाता है ।

28. **अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।**
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ।।

जो चंचल कमीना है ज़िद्दी है सुस्त,
नहीं काम करने में चालाक-ओ चुस्त ।
फ़रेबी शरीर और मग़मूम है,
वो आमल तमोगुण से मौसूम है ।।

शब्दार्थ —अयुक्तः—चंचल चित्तवाला; प्राकृतः—भौतिकवादी; स्तब्धः—हठी; शठ—दुष्ट; नैष्कृतिकः—दूसरों के काम को बिगाड़नेवाला; अलसः—आलसी; विषादी—विषाद करने वाला; दीर्घसूत्री—कार्य को टालनेवाला; च—और; कर्त्ता—कर्ता; तामसः— तामस; उच्यते—कहलाता है ।

मग़मूम—दुःखी; मौसूम—प्रसिद्ध ।

भावार्थ —जो कर्ता अयुक्त शिक्षारहित घमंडी और दूसरों की जीविका का नाश करने वाला एवं शोक करने वाला, आलसी व दीर्घसूत्री है वह कर्ता तामस कहलाता है ।

29. बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्राच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय ।।

इयाँ अक्ल-ए इन्साँ में हों तीन गुण,
बताता हूँ अर्जुन तवज्जो से सुन ।
हैं गुण अज़्म दिल के भी तीनों यही,
बा-तफ़सील सुन मुझ से ले आगही ।।

शब्दार्थ –बुद्धेः–बुद्धि के; भेदम्–भेद को; धृतेः–धृति के; च–और; एव–ही; गुणतः–गुणों के भेद से; त्रिविधम्–तीन प्रकार के; शृणु–सुन; प्रोच्यमानम्–जैसा मेरे द्वारा कहा गया है; अशेषेण–विस्तार; पृथक्त्वेन–अलग-अलग; धनंजय–हे अर्जुन ।

इयाँ–प्रगट; तवज्जो–ध्यानपूर्वक; अज़्म–धृति; बा-तफ़सील–विस्तारपूर्वक; आगही–जानकारी ।

भावार्थ –हे अर्जुन! अब तू सत्त्व-रज-तम–इन तीन गुणों के अनुसार 'बुद्धि' और 'धृत्ति' के तीन भेदों को सुन जिन्हें मैं पूरी तरह से अलग-अलग करके बतलाता हूँ ।

30. प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी ।।

हों तर्क-ओ अमल ख़ैर हो या हो शर,
निजात-ओ असीरी दिलेरी कि डर ।
जो फ़रक-ओ तमीज़ इनमें समझायेगी,
सतोगुण वही अक्ल कहलायेगी ।।

शब्दार्थ –प्रवृत्तिम्–प्रवृत्ति-मार्ग को; च–और; निवृत्तिम्–निवृत्ति-मार्ग को; च–और; कार्याकार्ये–करने योग्य और न करने योग्य को; भयाभये–भय और अभय को; बन्धं–बन्धन को; मोक्षम्–मोक्ष को; च–और; या–जो; वेत्ति–जानती है; बुद्धिः–बुद्धि; सा–वह; पार्थ–हे अर्जुन; सात्त्विकी–सात्त्विकी है ।

तर्क–त्याग; शर–दुष्कर्म; निजात–मोक्ष; असीरी–बन्ध; फ़रक-ओ तमीज–भेद ।

भावार्थ– हे अर्जुन! जो बुद्धि प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग को कर्त्तव्य व अकर्त्तव्य को, भय व अभय एवं बंधन और मोक्ष को यथार्थ जानती है। वह बुद्धि सात्विकी होती है।

31. **यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।**
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी।।

बताये न जो साफ़ धर्म और अधर्म,
रवा कौन है ना-रवा कौन कर्म।
तो अर्जुन नहीं है सतोगुण वो अक़्ल,
है अपने गुणों से रजोगुण वो अक़्ल।।

शब्दार्थ –यया–जिससे; धर्मम्–धर्म को; अधर्मम्–अधर्म को; च–और; कार्यम्–कर्त्तव्य कर्म को; च–और; अकार्यम्–न करने योग्य कर्म को; एव–ही; च–और; अयथावत्–जैसा है वैसे नहीं; प्रजानाति–जानता है; बुद्धि–बुद्धि; सा–वह; पार्थ–हे अर्जुन; राजसी–राजसी है।

रवा–उचित; न रवा–अनुचित।

भावार्थ –हे अर्जुन! जिस बुद्धि के द्वारा व्यक्ति धर्म और अधर्म को, कार्य और अकार्य को ठीक-ठीक नहीं समझ पाता, वह बुद्धि राजसी होती है।

32. **अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।**
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी।।

घिरी हो अन्धेरे में दानिश अगर,
जो शर को कहे ख़ैर नेकी को शर।
हर इक बात उलटी हर इक में फ़तूर,
तमोगुण वही अक्ल है बिलज़रूर।।

शब्दार्थ –अधर्मम्–अधर्म को; धर्मम्–धर्म के रूप में; इति–इस प्रकार से; या–जो बुद्धि; मन्यते–मानती है; तमसा–अज्ञानान्धकार से; आवृता–ढकी हुई; सर्वार्थान्–सर्व अर्थों को; विपरीतान्–विपरीत, उलटा; च–और; बुद्धिः–बुद्धि; सा–वह; पार्थ–हे अर्जुन; तामसी–तामसी कहलाती है।

दानिश–बुद्धि; शर–अशुभ; ख़ैर–शुभ; फतूर–अवगुण।

भावार्थ – हे अर्जुन ! जिस बुद्धि के द्वारा अन्धकार के आवरण से घिरा हुआ व्यक्ति अधर्म को धर्म समझने लगता है, और सब बातों को उल्टा देखने लगता है, वह बुद्धि तामसी होती है ।

33. धृत्या यया धारयते मनः प्राणेन्द्रियक्रियाः ।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी ।।

अगर योग से अ़ज़्म हो उस्तवार,
हवास-ओ दिल-ओ दम पे हो इख़्त्यार ।
तो अच्छा वही अ़ज़्म हो अर्जुन समझ,
वही अ़ज़्म रासख़ सतोगुण समझ ।।

शब्दार्थ – धृत्या–संकल्प; यया–जिससे; धारयते–धारण करता है; मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः–मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को; योगेन–योग से; अव्यभिचारिण्या–निरंतर; धृतिः–धैर्य; सा–वह; पार्थ–हे अर्जुन; सात्त्विकी– सात्त्विकी है ।

अ़ज़्म–निश्चय; उस्तवार–दृढ़; हवास–इन्द्रियाँ; दिल–मन; दम–प्राण; इख़्त्यार–अधीन; रासख–सत् ।

भावार्थ – हे अर्जुन ! जिस संकल्प के द्वारा व्यक्ति मन, प्राण, इन्द्रियाँ–इनकी गतिविधियों को एक केन्द्र में लक्ष्य पर टिकाये रखता है, उन्हें इधर-उधर नहीं भागने देता, वह धृति सात्विक होती है ।

34. यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन ।
प्रसंगेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ।।

मगर अ़ज़्म वो जिसमें हो शौक-ए ज़र,
फ़रायज़ से मकसद हो फ़िकर-ए समर ।
हवा-ओ हवस से रहे इल्तफ़ात,
रजोगुण है अर्जुन वो अ़ज़्म-ओ सबात ।।

शब्दार्थ – यया–जिससे; तु–परन्तु; धर्मकामार्थान्–धर्म, अर्थ, काम को; धृत्या–संकल्प; धारयते–धारण करता है; प्रसंगेन–आसक्ति से; फलाकांक्षी–कर्मफल की इच्छा करनेवाला; धृतिः–संकल्प; सा–वह; पार्थ–हे अर्जुन; राजसी–राजसी है ।

शौक-ए ज़र–धन; फ़रायज़–कर्त्तव्य; मकसद–उद्देश्य; फ़िकर-ए समर–फलाकाँक्षा; हवा–अहंकार; हवस–लोभ; इल्तफ़ात–ध्यान; अ़ज़्म–निश्चय; सबात–दृढ़ ।

भावार्थ –परन्तु हे अर्जुन! जिस संकल्प से व्यक्ति धर्म, अर्थ एवं काम के फलों में लिप्त बना रहता है, वह राजसी धृति कहलाती है।

35. **यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।**
न विमुंचति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी।।

है वो अज़्म खाली जहालत का बाब,
रहे आदमी जिसमें पाबन्द-ए ख़्वाब।
बढ़े ख़ौफ़-ओ रंज-ओ मलाल-ओ ग़ुरूर,
तमोगुण वही अज़्म है बिलज़रूर।।

शब्दार्थ –यया–जिससे; स्वप्नम्–निद्रा; भयम्–भय; शोकम्–शोक; विषादम्–दुःख; मदम्–मद, घमण्ड; एव–ही; च–और; न–नहीं; विमुंचति–त्यागता है; दुर्मेधाः–मूर्ख; धृतिः–धैर्य; सा–वह; पार्थ–हे अर्जुन; तामसी–तमोगुणी है।

जहालत–अज्ञानता; बाब–पाठ; पाबन्द-ए ख़्वाब–नींद के वशीभूत; ख़ौफ़–भय; रंज–विषाद; मलाल–शोक; ग़ुरूर–मद।

भावार्थ –हे अर्जुन! जिस संकल्प के द्वारा मूर्ख मनुष्य निद्रा, भय, शोक, विषाद, मद–इनको नहीं त्यागता, वह तामसिक धृति होती है।

36. **सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ।**
अभ्यासद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति।।

सुन अब मुझ से भारत के सरदार सुन,
कि सुख के भी इन्साँ में हैं तीन गुण।
है पहले वो सुख जिससे दुःख दूर हों,
बशर मश्क से जिसको मसरूर हो।।

शब्दार्थ –सुखम्–सुख; तु–लेकिन; इदानीम्–अब; त्रिविधम्–तीन प्रकार के; शृणु–सुन; मे–मुझ से; भरतर्षभ–हे भरत कुल में श्रेष्ठ अर्जुन! अभ्यासात्–अभ्यास से; रमते–रमण करता है; यत्र–जहाँ; दुःखान्तम्–दुःख के अन्त को; च–भी; निगच्छति–प्राप्त कर लेता है।

मश्क–अभ्यास; मसरूर–सुखी।

भावार्थ –हे भरत-श्रेष्ठ अर्जुन! अब तू मुझसे तीन प्रकार के सुख के विषय में सुन–ऐसे सुख के विषय में जिसमें दीर्घकाल तक रहने के कारण व्यक्ति रम जाता है, और जिसमें उसके दुःख का अन्त हो जाता है।

37. यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ।।

वो सुख जिससे हासिल हो दुःख से निजात,
वो पहले है ज़हर और फिर आब-ए हय्यात ।
वो सुख आत्मा को मिले ज्ञान से,
सतोगुण वही सुख है पहचान ले ।।

शब्दार्थ – यत्–जो; तत्–तो, वह; अग्रे–आरम्भ में; विषम्–विष; इव–सदृश; परिणामे–अन्त में; अमृतोपमम्–अमृत के सदृश; तत्–वह; सुखं–सुख; सात्त्विकम्–सात्त्विक; प्रोक्तम्–कहा गया है; आत्मबुद्धिप्रसादजम्–आत्मा और बुद्धि के प्रसाद से उत्पन्न ।
हासल–प्राप्त; निजात–मुक्ति; आब-ए हय्यात–अमृत ।

भावार्थ – जो सुख आरम्भ में विष जैसा लगता होता है परन्तु अन्त में अमृत के समान होता है, और जो व्यक्ति में आत्मसाक्षात्कार जगाता है, वह सात्त्विक सुख है ।

38. विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ।।

जो महसूस से मेल खा कर हवास,
मुसर्र्रत को लज़्ज़त से हों रूशनास ।
तो पहले वो अमृत है फिर ज़हर है,
रजोगुण मुसर्र्रत की इक लहर है ।।

शब्दार्थ – विषयेन्द्रियसंयोगात्–विषय तथा इन्द्रियों के संयोग से; यत्–जो सुख; तत्–तो, वह; अग्रे–आदि में; अमृतोपमम्–अमृत के समान है; परिणामे–परिणाम में; विषम्–विष; इव–के समान; तत्–वह; सुखम्–सुख; राजसम्–राजस; स्मृतम्–माना जाता है ।
महसूस–इन्द्रियाँ; हवास–इन्द्रियाँ; मुसर्रत–खुशी; रूशनाश–जानकारी ।

भावार्थ – जो सुख विषय तथा इन्द्रियों के संयोग से उत्पन्न होता है, जो आरम्भ में अमृत के समान परन्तु परिणाम में विष के समान होता है, वह सुख राजसिक है ।

39. यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ।।

हो मदहोश इन्साँ जिस आराम में,
जो धोखा है आग़ाज-ओ इल्जाम में ।
बढ़े सुस्ती-ओ गफ़लत-ओ ख्वाब से,
तमोगुण वो सुख है समझ लीजिये ।।

शब्दार्थ – यत्–जो; अग्रे–आदि में; च–और; अनुबन्धे–परिणाम में, अन्त में; च–और; सुखम्–सुख; मोहनम्–मोहमय; आत्मनः–अपना; निद्रालस्यप्रमादोत्थम्–निद्रा, आलस्य और प्रमाद से पैदा होता है; तत्–उसको; तामसम्–तामस; उदाहृतम्– कहलाता है ।

आग़ाज़–आदि; इन्जाम–अन्त ।

भावार्थ – जो सुख आरम्भ और अन्त में आत्मा को मोह में फँसाये रखता है, जो सुख निद्रा, आलस्य तथा प्रमाद से उत्पन्न होता है, वह सुख तामसिक है ।

40. न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभर्गुणैः ।।

जो माया से पैदा हुए तीन गुण,
कोई उनसे बाहिर नहीं खूब सुन ।
ज़मीं के जो बाशी हैं, सब उनमें कैद,
फ़लक पर जो हैं देवता उनके सैद ।।

शब्दार्थ – न–नहीं; तत्–वह; अस्ति–है; पृथिव्याम्–पृथिवी पर; वा–या; दिवि–स्वर्ग में; देवेषु–देवों में; वा–या; पुनः–फिर; सत्त्वम्–प्राणी,व्यक्ति; प्रकृतिजैः–प्रकृति से उत्पन्न; मुक्तम्–मुक्त; यत्–जो; एभिः–इन; स्यात्–हो; त्रिभिः–तीनों; गुणैः–गुणों से ।

बाशी–निवासी; फलक–आकाश; सैद–अधीन ।

भावार्थ – इस पृथ्वी लोक पर कोई ऐसा नहीं है और देवलोक में कोई देवता ऐसा नहीं है जो प्रकृति द्वारा उत्पन्न सत्त्व-रज-तम–इन तीन गुणों से मुक्त हो ।

41. ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप ।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ।।

ब्राह्मण कि हो क्षत्री, शूद्र, वैश,
सुन अर्जुन हर इक का निराला है केश ।
फ़रायज़ जुदा सबकी ख़िसलत ज़ुदा,
कि फ़ितरत ने की सबकी तीनत जुदा ।।

शब्दार्थ – ब्राह्मणक्षत्रियविशाम्–ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों का; शूद्राणाम्–शूद्रों का; च–और; परन्तप–हे शत्रुओं को तपाने वाले अर्जुन; कर्माणि–कर्म; प्रविभक्तानि–विभाजित; स्वभावप्रभवैः–स्वभाव से उत्पन्न; गुणैः–गुणों से ।

कैश-रीति; फ़रायज़–कर्तव्य; खिसलत–स्वभाव; तीनत–स्वभाव ।

भावार्थ – हे परंतप! शत्रुओं को तपाने वाले अर्जुन! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के अपने-अपने स्वभाव से उत्पन्न हुए सत्त्व-रज-तम–इन गुणों के कारण इनके कर्म अलग-अलग बँटे हुए हैं ।

42. शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ।।

सकूँ ज़ब्त अफ़-ए खता रासती,
खिरद, इल्म, ईमाँ, पाकीज़गी ।
रियाज़त, इबादत के पाकीज़ा कर्म ,
यह फ़ितरत ने रक्खा ब्राह्मण का धर्म ।।

शब्दार्थ – शमः–शान्ति-भाव; दमः–आत्म-संयम; तपः–तपस्या; शौचम्–पवित्रता; क्षान्तिः–सहिष्णुता; आर्जवम्–सरलता; एव–ही; च–और; ज्ञानम्–ज्ञान; विज्ञानम्–परोक्ष-ज्ञान; आस्तिक्यम्–आस्तिकता; धार्मिकता–ब्राह्मण के कर्म; स्वभावजम्–स्वाभाविक हैं ।

सकूँ–शम; ज़ब्त–दम; अफ़्व-ए खता–क्षमाशील; रामती–सत्यता; खिरद–बुद्धि; इल्म–ज्ञान; ईमाँ–धर्म; पाकीज़गी–पवित्रता; रियाज़त–तप; इबादत–उपासना; पाकीज़ा–शुभ ।

भावार्थ – शान्त-स्वभाव, आत्म-संयम, तपस्या, पवित्रता, सहनशक्ति, सरलता, ज्ञान, अनुभव, आस्तिकता–ये ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं ।

43. शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ।।

शुजायत, सख़ावत, सबात और जलाल,
ख़ुदावन्द-गारी-ओ–फ़न में कमाल ।
कभी छोड़ आना न मैदान-ए जंग,
यही क्षत्री की हैं फ़ितरत के रंग ।।

शब्दार्थ – शौर्यम्–शूरता; तेजः–तेज; धृतिः–धैर्य; दाक्ष्यम्–दक्षता (चतुराई, साहस); युद्धे–युद्ध में; च–और; अपि–भी; अपलायनम्–न भागना; दानम्–दान; ईश्वरभावः–हुकूमत का भाव होना; च–और; क्षात्रम्–क्षत्रिय का; कर्म–कर्म; स्वभावजम्–स्वाभाविक होता है ।

शुज़ायत–शूरता; सखावत–दान; सबात–दृढ़ता; ज़लाल–तेज़; ख़ुदावन्द–हुकूमत करना; मारी-ओ फ़न–दक्षता ।

भावार्थ – वीरता, तेज, धैर्यता, चतुरता, युद्ध में पीठ न दिखाना, दानशीलता और हुकूमत करना–ये क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं ।

44. कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम् ।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ।।

जो है वैश्य तबअन तिजारत करे,
करे गल्ला-बानी, ज़रायत करे ।
जो है शूद्र सबके वो करता है कार,
है फ़ितरत से ख़लकत का ख़िदमतगुज़ार ।।

शब्दार्थ – कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यम्–कृषि, गोरक्षा, व्यापार; वैश्यकर्म–वैश्यों का कर्म; स्वभावजम्–स्वभाव से ही उत्पन्न है; परिचर्यात्मकम्–सेवात्मक; कर्म–कर्म; शूद्रस्य–शूद्र का; अपि–भी; स्वभावजम्–स्वाभाविक है ।

तबअन—स्वाभाविक रूप से; तिजारत—व्यापार; गल्ला-बानी—व्यापार; जरायत—खेती; ख़लकत—जनता; ख़िदमतगुज़ार—सेवक ।

भावार्थ —खेती, गोपालन, व्यापार—ये वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं और शूद्र का स्वाभाविक कर्म अन्यों की सेवा करना है ।।

45. स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ।।

अगर अपने अपने करो कारोबार,
तो हो जाओगे कामल इल्जाम-कार ।
अगर फ़र्ज़ की अपने तामील हो,
तो सुन क्योंकर इन्साँ की तकमील हो ।।

शब्दार्थ —स्वे—अपने; स्वे—अपने; कर्माणि—कर्म में; अभिरतः—लगा हुआ, तत्पर; संसिद्धिम्—सिद्धि को; लभते—प्राप्त करता है; नरः—मनुष्य; स्वकर्मनिरतः—अपने कार्य में लीन; सिद्धिम्—सिद्धि को; यथा—जिस प्रकार से; विन्दति—प्राप्त करता है; तत्—उसको; शृणु—सुनो ।

कामल—सिद्ध; इंजाम-कार—अन्ततः; तामील—पूरा करना; तकमील—सिद्धि ।

भावार्थ —अपने-अपने कर्म में जो व्यक्ति लगा रहता है, वह सिद्धि को प्राप्त कर लेता है । अपने कर्म में ही लगे रहने से व्यक्ति सिद्धि को जैसे प्राप्त कर लेता है—उस विधि को सुनो ।

46. यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ।।

वही ज़ात जिससे ख़ुदाई हुई,
जो सारे जहाँ पर है छाई हुई ।
उसी की परस्तिश है तामील-फ़र्ज़,
है तकमील इन्साँ की तकमील फ़र्ज़ ।।

शब्दार्थ —यतः—जिससे; प्रवृत्तिः—जन्म, कर्म में चेष्टा; भूतानाम्—सब जीवों का; येन—जिससे; सर्वम्—सब; इदम्—यह; ततम्—फैला हुआ है,

व्याप्त है; स्वकर्मणा—अपने कर्म से; तम्—उसको; अभ्यर्च्य—पूजा करके; सिद्धिम्—सिद्धि को; विन्दति—प्राप्त करता है; मानवः—मनुष्य।

ज़ात—परमात्मा; खुदाई—सृष्टि; परस्तिश—उपासना; तामील-फर्ज़—कर्तव्य पूरा करना; तकमील—सिद्धि; तकमील—कर्तव्य सम्पादन करना।

भावार्थ —जो सब प्राणियों का उद्गम है और सर्वव्यापक है, उस परमात्मा की उपासना करके व्यक्ति अपना कर्म करते हुये सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।

47. श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्।।

नहीं मन्सबी धर्म तेरा अगर,
जो खूबी से भी कर सके तो न कर।
जो है धर्म तेरा वो कर काम आप,
बुरा हो भला हो नहीं उसमें पाप।।

शब्दार्थ —श्रेयान्—श्रेष्ठ है; स्वधर्मः—अपना धर्म; विगुणः—गुणों से शून्य, भली प्रकार आचरण न किया हुआ; परधर्मात्—दूसरे के धर्म से; स्वनुष्ठितात्—भली-भाँति किया गया; स्वभावनियतम्—स्वभाव के अनुसार निश्चित; कुर्वन्—करता हुआ; आप्नोति—प्राप्त करता है; किल्बिषम्—पाप को।

मन्सबी—ऊँचा।

भावार्थ —अपना धर्म—'स्व-धर्म' —यदि ठीक तरह पालन न किया जा सके, और दूसरे का धर्म—'पर धर्म' —यदि पालन करने में आसान हो, तो भी 'स्व-धर्म' का पालन करना अधिक अच्छा है। स्वभाव के अनुसार 'नियत' कर्म को करने वाले व्यक्ति को पाप नहीं लगता।

48. सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः।।

जो तबई है धर्म उसकी तामील कर,
जो नाकिस भी हो उसकी तकमील कर।

कि कामों में अर्जुन जियाँ साथ है,
जहाँ भी है आतिश धुआँ साथ है ।।

शब्दार्थ – सहजम्–सहज, स्वभाव के अनुकूल; कर्म–कर्म को; कौन्तेय–हे अर्जुन; सदोषम्–दोष-युक्त को; अपि–भी; त्यजेत्– छोड़ें; सर्वारम्भाः–सब कार्य; हि–निश्चय से; दोषेण–दोष से; धूमेन–धूम से; अग्नि–आग; इव–समान; आवृताः–ढके हुए होते हैं ।

तबई–स्वाभाविक; तामील–पूरा करना; नाकिस–दोषयुक्त; जियाँ–हानि; आतिश–अग्नि ।

भावार्थ – हे अर्जुन ! व्यक्ति को अपने सहज स्वभाव के अनुसार जो कार्य हो उसे छोड़ना नहीं चाहिये चाहे उसमें दोष भी क्यों न हो क्योंकि जैसे आग धुएँ से ढकी रहती है वैसे सब कर्म किसी न किसी दोष से ढके रहते हैं ।

49. असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ।।

जो कामों में मन को लगावट नहीं,
हवस तर्क हो नफ़्स ज़ेर-ए नगी ।
तो इस तर्क से पाये रुतबा बलन्द,
न कर्मों की बाकी रहे कैद-ओ बन्द ।।

शब्दार्थ – असक्तबुद्धिः–आसक्तिरहित बुद्धि वाला; सर्वत्र–सब जगह; जितात्मा–जितेन्द्रिय; विगतस्पृहः–निरीह; नैष्कर्म्यसिद्धिम्–निष्कर्म की सिद्धि; परमाम्–श्रेष्ठ; संन्यासेन– संन्यास से; अधिगच्छति–प्राप्त कर लेता है ।

हवस–लोभ; तर्क–त्याग; नफ़्स–मन; ज़ेरेनगीं–निग्रह में; तर्क–त्याग; रुतबा–पद; बलन्द–परम; कद-ओ-बन्द–बन्धन ।

भावार्थ – जिसने सब कहीं से आसक्ति को खींच लिया है, जिसने मन को जीत लिया है, जिसने कामनाओं को त्याग दिया है, वह इस प्रकार के संन्यास द्वारा उस परम सिद्धि को पा लेता है जिसे 'कर्म न होना' कहा जा सकता है ।

50. सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ।।

सुन अब मुख़्तसिर मुझ से कुन्ती के लाल,
कि हासिल जो करता है औज-ए कमाल ।
वो फिर ब्रह्म से जा के वासिल हो कब,
यह आला-तरीं ज्ञान हासिल हो कब ।।

शब्दार्थ – सिद्धिम्–सिद्धि को; प्राप्तः–प्राप्त करने वाला; यथा–जैसे; ब्रह्म–ब्रह्म को; तथा–वैसे, और; आप्नोति–प्राप्त करता है; निबोध–जान ले; मे–मेरे से; समासेन–संक्षेप से; एव–ही; कौन्तेय–हे अर्जुन; निष्ठा–स्थिति; ज्ञानस्य–ज्ञान की; या–जो; परा–श्रेष्ठ ।

मुखतसिर–संक्षिप्त; हासिल–प्राप्त; औज़-ए कमाल–परम सिद्धि; वासिल–प्राप्त; आला–उत्कृष्ट ।

भावार्थ – हे अर्जुन ! 'सिद्धि' को प्राप्त हुआ व्यक्ति परम सिद्धावस्था ब्रह्म को प्राप्त करता है, उसका मैं संक्षेप में वर्णन करता हूँ। उसे तुम जानो ।

51. बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ।
शब्दादीनिव्षयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ।।

हो काबू जिसे नफ़्स पर मुस्तकिल,
करे पाक दानिश में सरशार दिल ।
न आवाज़-ओ महसूस अशिया से काम,
वो रग़वत से नफ़रत से बाला मदाम ।।

शब्दार्थ – बुद्ध्या–बुद्धि से; विशुद्धया–विशुद्ध; युक्तः–संयुक्त होकर; धृत्या–धैर्य से; आत्मानम्–स्वयं को; नियम्य–संयम में करके; च–और; शब्दादीन्–शब्द आदि; विषयान्–विषयों को; त्यक्त्वा–छोड़कर; रागद्वेषौ–राग और द्वेष को; व्युदस्य–एक ओर रखकर, दूर करके; च–और ।

नफ़्स–मन; मुस्तिकल–स्थायी रूप से; पाकदानिश–विवेकी बुद्धि; सरशार–युक्त; आवाज-ओ महसूस–शब्दादि विषय; रग़बत–राग; नफ़रत–द्वेष; बाला–अतीत; मदाम–सदा ही ।

भावार्थ – विशुद्ध बुद्धि से युक्त होकर, स्वयं को धैर्य–अर्थात् दृढ़ता पूर्वक संयम में रखकर, शब्द आदि इन्द्रियों के विषयों को त्याग कर, राग और द्वेष को नष्ट करके ।

52. विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ।।

जो खाता हो कम और हो ख़िलवतनशीं,
हो तन, मन, ज़बाँ जिसके ज़ेर-ए नगीं ।
रहे ध्यान और योग में मुस्तकिल,
हमेशा हो विराग में उसका दिल ।।

शब्दार्थ – विविक्तसेवी–एकान्तवासी; लघ्वाशी–अल्पाहारी; यत्वाक्काय-मानसः–वाणी, काया और मन को नियंत्रण में रखने वाला; ध्यानयोगपरः–ध्यान-योग में लगा हुआ; नित्यम्–सदा; वैराग्यम्–वैराग्य को; समुपाश्रितः–आश्रय लेने वाला ।
खिलवतनशीं–एकान्तसेवी; ज़ेरेनगीं–अधीन; मुस्तकिल–निरन्तर ।

भावार्थ – एकान्तवासी, अल्प आहारी, वाणी-शरीर-मन को पूर्ण संयम में रखने वाला, सदा ध्यान तथा एकाग्रता में तत्पर, वैराग्य की शरण लिये हुए ।

53. अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ।।

अहंकार उसमें न बल का ग़रूर,
तकब्बर ग़ज़ब हिर्स-ओ शाहवत से दूर ।
खुदी से बरी जिसके दिल में सकूँ,
वो ही ब्रह्म का वस्ल पाये न क्यों ।।

शब्दार्थ – अहंकारम्–अहंकार को; बलम्–बल को; दर्पम्–अभिमान को; कामम्–काम को; क्रोधम्–क्रोध को; परिग्रहम्–अधिक सम्पत्ति के संग्रह को; विमुच्य–त्यागकर; निर्ममः–ममतारहित; शान्तः–शान्त; ब्रह्मभूयाय–आत्मसाक्षात्कार होने के लिये; कल्पते–योग्य हो जाता है ।

ग़रूर—मान; तकब्बर—दर्प; ग़ज़ब—क्रोध; हिर्स—लोभ; शाहवत—काम; ख़ुदी—अहंकार; बरी—रहित; सकूँ—शान्ति; वस्ल—दर्शन ।

भावार्थ —अहंकार, बल, दर्प, काम, क्रोध और धन-सम्पत्ति को छोड़ कर, ममतारहित होकर जो शान्त स्वभाव का हो जाता है, वह निश्चय ही आत्म साक्षात्कार के पद को प्राप्त हो जाता है ।

54. ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ।।

हो जब वासिल-ए ब्रह्म दिल शाद हो,
ग़म-ओ रंज-ओ उलफ़त से आज़ाद हो ।
जो समझे है मख़लूक यकसाँ सभी,
नसीब उसको भक्ति हो आला मेरी ।।

शब्दार्थ —ब्रह्मभूतः—ब्रह्म से एकाकार हुआ-हुआ; प्रसन्नात्मा—निर्मल आत्मा वाला व्यक्ति; शोचति—शोक करता है; कांक्षति—इच्छा करता है; समः—समान; सर्वेषु—सब ही में; भूतेषु—प्राणियों में; मद्भक्तिम्—मेरी भक्ति को; लभते—प्राप्त करता है; पराम्—परम दिव्य ।

उलफ़त—आसक्ति; मख़लूक—प्राणी; यकसाँ—समान; नसीब—प्राप्त; आला—परम ।

भावार्थ —ब्रह्म के साथ एकाकार होने पर साधक 'प्रसन्नात्मा' हो जाता है, न उसे कोई शोक होता है, न उसे कोई इच्छा रहती है । ऐसा व्यक्ति सब प्राणियों को सम-दृष्टि से देखने लगता है और मेरी शुद्ध भक्ति को प्राप्त करता है ।

55. भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ।।

वो भक्ति से मेरी मुझे जान ले,
कि मैं कौन हूँ क्या हूँ पहचान ले ।
मेरा ज्ञान जब उसको हासिल हुआ,
मेरी ज़ात-ए आली में वासिल हुआ ।।

शब्दार्थ – भक्त्वा–भक्ति से; माम्–मुझको; अभिजानाति–पहचानता है; यावान्–जितना; यः–जो; च–और; अस्मि–हूँ; तत्त्वतः–यथार्थ रूप से; ततः–फिर; माम्–मुझको; तत्त्वतः–यथार्थ रूप में; ज्ञात्वा–जान कर; विशते–प्रवेश करता है; तदनन्तरम्–उसके बाद।

हासिल–प्राप्त; ज़ात-ए आली–परम सत्ता; वासिल–एकमेक।

भावार्थ – वह भक्ति के द्वारा इस बात को जान लेता है कि मैं तात्त्विक रूप में कितना हूँ, और कौन हूँ; उसके पश्चात् मुझे तत्त्व रूप में जान लेने पर वह मुझ में प्रवेश पा जाता है।

56. **सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।**
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्।।

करे जिस कदर उस पे लाज़म हैं काम,
मगर आसरा मुझ पे रक्खे मदाम।
वो रहमत में मेरी समा जायेगा,
मकाम-ए बका को वो पा जायेगा।।

शब्दार्थ – सर्वकर्माण्यपि–सब कर्मों को; अपि–भी; कुर्वाणः– करता हुआ; मद्व्यपाश्रयः–मेरा आश्रय लेने वाला; मत्प्रसादात्– मेरी प्रसन्नता से; अवाप्नोति–प्राप्त करता है; शाश्वतम्–नित्य; पदम्–पद को; अव्ययम्–अविनाशी।

लाज़म–कर्तव्यकर्म; मदाम–सदा; रहमत–कृपा; मकाम-ए बका–अविनाशी पद।

भावार्थ – मेरा आश्रय पाकर सदा सब प्रकार के कर्मों को करता हुआ मेरी कृपा से अविनाशी पद को प्राप्त करता है।

57. **चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।**
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव।।

तू मुझ पर सभी काम संन्यास कर,
उन्हें छोड़ दिल से मेरी आस कर।
तू ले अक्ल के योग का आसरा,
ख़्यालात अपने मुझीं में लगा।।

शब्दार्थ –चेतसा–चित्त से; सर्वकर्माणि–सब कर्मों को; मयि–मुझ में ही; संन्यस्य–समर्पित करके; मत्परः–मुझ में लीन; बुद्धियोगम्– बुद्धि-योग को, ज्ञान-योग को; उपाश्रित्य–आश्रय लेकर; मच्चित्तः–मुझ में ही चित लगाने वाला; सततम्–निरन्तर; भव–हो बन जा ।
संन्यास–अर्पण; ख़्यालात–मन ।

भावार्थ –अपने चित्त में सब कर्मों को मुझे समर्पित करके, मुझे ही अपना लक्ष्य समझता हुआ, 'बुद्धि-योग' का आश्रय लेकर, अपने चित को निरन्तर मुझ में लगाये रख ।

58. **मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।**
अथ चेत्त्वहमहंकारान्न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि ।।

अगर मुझ को मन में लगायेगा तू,
तो हर रोग से पार जायेगा तू ।
सुनेगा न मेरी अहंकार से,
तबाही में जायेगा पिन्दार से ।।

शब्दार्थ –मच्चितः–मुझमें दत्तचित्त; सर्वदुर्गाणि–सब कष्टों को; मत्प्रसादात्–मेरी कृपा से; तरष्यिसि–पार कर लेता; अथ– और; चेत्–यदि; त्वम्–तू; अहंकारात्–अहंकार के वशीभूत होकर; न–नहीं; श्रोष्यसि–सुनेगा; विनंक्ष्यसि–नष्ट हो जायेगा ।
पिन्दार–बिल्कुल ।

भावार्थ –हे अर्जुन! अपने चित्त को मुझ में लगा कर तू मेरी कृपा से सब संकटों को पार कर जाएगा; परन्तु यदि अहंकार के कारण मेरी बात नहीं सुनेगा, तो नष्ट हो जाएगा ।

59. **यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।**
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति ।।

यह कहना तेरा खुद अहंकार है,
कि मुझ को लड़ाई से इन्कार है ।
यह सब अज़्म काफूर हो जायेगा,
तू फ़ितरत से मज़बूर हो जायेगा ।।

शब्दार्थ –यत्–यदि; अहंकारम्–अहंकार को; आश्रित्य–आश्रय लेकर; न–नहीं; योत्स्ये –युद्ध करूँगा; इति–इस प्रकार से; मन्यसे–मानता है; एषः–यह; व्यवसायः–निश्चय; ते–तेरा; प्रकृतिः प्रकृति; त्वाम्–तुझको; नियोक्ष्यति–लगा देगा ।

अज़्म–निश्चय; काफूर–दूर हो जाना; फ़ितरत–स्वभाव ।

भावार्थ –यदि 'अहंकार' के वश में होकर तू यह मान रहा है कि मैं युद्ध नहीं करूँगा, तो तेरा निश्चय मिथ्या है, संसार का संचालन करने वाली सत्ता तुझ से जो काम लेना चाहती है उस काम में तुझे जबर्दस्ती जोत देगी । तेरा स्वभाव तुझे जबरदस्ती युद्ध में लगा देगा ।

60. **स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।**
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ।।

बनाया है जो तेरी फ़ितरत ने धर्म,
करायेगी फ़ितरत वही तुझ से कर्म ।
तुझे लाख रोकें फ़रेब-ए ख़्याल,
करेगा तू नाचार कुन्ती के लाल ।।

शब्दार्थ –स्वभावजेन–स्वभाव से उत्पन्न; कौन्तेय–हे अर्जुन; निबद्धः–बँधा हुआ; स्वेन–अपने; कर्मणा–कर्म से; कर्तुम्–करने के लिये; न–नहीं; इच्छसि–अभिलाषा करता है; यत्–जिसको; मोहात्–मूढता के कारण; करिष्यसि–करेगा; अवशः–विवश हुआ; अपि–भी; तत्–उसको ।

फ़ितरत–प्रकृति; फरेब–धोखा; ख्याल–मन; नाचार–बाध्य होकर ।

भावार्थ –हे अर्जुन ! तू मोहवश जिस काम को नहीं करना चाहता उसे तू अपने स्वभाव से उत्पन्न होने वाले कर्म से बँधा हुआ विवश होकर करेगा ।

61. **ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।**
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ।।

सुन अर्जुन ख़ुदा है ख़ुदा हर कहीं,
ख़ुदाई के दिल में ख़ुदा है मकीं ।
वो सब हस्तियों को घुमाता रहे,
वो माया का चक्कर चलाता रहे ।।

शब्दार्थ —ईश्वरः—परमात्मा; सर्वभूतानाम्—सब प्राणियों के; हृद्देशे— हृदय में; तिष्ठति—वास करता है; भ्रामयन्—घुमाता हुआ; सर्वभूतानि—सब प्राणियों को; यन्त्रारूढानि—यंत्र पर चढ़े हुओं को; मायया—अपनी माया से ।

खुदाई—सृष्टि; मकीं—निवासित; हस्तियों—प्राणियों ।

भावार्थ — हे अर्जुन ! परमात्मा सब प्राणियों के हृदय में बैठा हुआ है और वह उनको इस प्रकार घुमा रहा है मानो वे किसी यंत्र पर चढ़े हुए हों ।

62. **तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।**
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ।।

तू जा-ए पनाह उसी को बना,
उसी ज़ात में अपनी हस्ती लगा ।
तू रहमत में उसकी समा जायेगा,
सकूँ-ओ बका उससे पा जायेगा ।।

शब्दार्थ —तम्—उसकी; एव—ही; शरणम्—शरण को; गच्छ—जा; सर्वभावेन—सब प्रकार से; भारत—हे अर्जुन; तत्प्रसादात्—उसकी कृपा से; पराम्—श्रेष्ठ, परम; शान्तिम्—शान्ति को; स्थानं—स्थिति को, पद को; प्राप्स्यसि—प्राप्त करेगा; शाश्वतम्—नित्य ।

जा-ए पनाह—शरण लेने योग्य; हस्ती—मन; रहमत—प्रसाद; सकूँ—परम शान्ति; बका—अविनाशी पद ।

भावार्थ —हे अर्जुन ! तू सब प्रकार से, अपने सम्पूर्ण अस्तित्व को समेट कर उसी की शरण में जाओ । उसकी कृपा से तुझे परम शान्ति और शाश्वत भाव प्राप्त होगा ।

63. **इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।**
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ।।

बताया तुझे मैंने ऐ पाकबाज़,
यह ज्ञानों का ज्ञान और राज़ों का राज ।
तवज्जो से इस राज़ पर ग़ौर कर,
अमल इसपे तू चाहे जिस तौर कर ।।

शब्दार्थ –इति–इस प्रकार का; ते–तुझको; ज्ञानम्–ज्ञान; आख्यात्म्–वर्णन किया है; गुह्यात्–रहस्य से; गुह्यतरम्–अधिक रहस्य; मया–मैंने; विमृश्य–विचार कर; एतत्–यह; अशेषेण–पूर्णतः; यथा–जैसा; इच्छसि–चाहता है; तथा–वैसा ही; कुरु–कर ।

पाकबाज़–निष्पाप; तवज्जो–ध्यानपूर्वक; तौर–विधि ।

भावार्थ –इस प्रकार यह गोपनीय से अति गोपनीय ज्ञान मार्ग मैंने तुझ को दिया है । अब तू इस रहस्ययुक्त ज्ञान को पूर्णतः भली-भाँति विचार कर जैसे चाहता है वैसा ही कर ।

64. **सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।**
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ।।

सुन अब सर-ए पन्हा की इक और बात,
बड़े राज की काबल-ए ग़ौर बात ।
कि अर्जुन तू प्यारा है महबूब है,
तेरा फ़ायदा मुझ को मतलूब है ।।

शब्दार्थ –सर्वगुह्यतमम्–सर्वाधिक गुह्यज्ञान; भयः–फिर; शृणु–सुन; मे–मेरे; परमम्–श्रेष्ठ; वचः–वचन को; इष्टः–प्रिय; असि–तू है; मे–मेरा; दृढम्–निश्चय से; इति–ऐसे; ततः–उस कारण से; वक्ष्यामि–कहूँगा; ते–तेरे; हितम्–कल्याण को ।

सर-ए पन्हा–गुह्यतम; महबूब–इष्ट; मतलूब–चाहना ।

भावार्थ –अब तू मेरे परम वचन को फिर सुन ले–यह सर्वाधिक गुह्यज्ञान है । क्योंकि तू मेरा परम प्रिय है इसलिए मैं तुझे बतलाऊँगा कि तेरे लिये क्या हितकर है ।

65. **मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां मनस्कुरु ।**
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ।।

लगा मुझ में दिल भक्त हो जा मेरा,
तू कर यज्ञ मेरे सामने सर झुका ।
मुझे तुझ से मुझ से तुझे प्यार है,
मेरा वस्ल का तुझ से इकरार है ।।

शब्दार्थ —मन्मनाः—मुझ में लगाये हुए मन वाला; भव—हो; मद्भक्तः—मेरा भक्त; मद्याजी—मेरा पूजक; माम्—मुझको ही; नमस्कुरु—नमस्कार कर; माम्—मुझको; एव—ही; एष्यसि—प्राप्त करेगा; सत्यम्—सच ही; ते—तुझसे; प्रतिजाने—प्रतिज्ञा करता हूँ; प्रियः—प्रिय; असि—तू है; मे—मेरा ।

वस्ल—दर्शन ।

भावार्थ —अपने को मुझ में लगा, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन कर, मुझे नमस्कार कर, ऐसा करने से तू मुझ तक पहुँच जाएगा । क्योंकि तू मेरा प्रिय है इसलिए मैं तुझे सचमुच इस बात का वचन देता हूँ ।

66. **सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।**
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।

तू सब अधर्म छोड़ और ले मेरी राह,
तू माँग आ के दामन में मेरे पनाह ।
तेरे पाप सब दूर कर दूँगा मैं,
न ग़मगीं हो मसरूर कर दूँगा मैं ।।

शब्दार्थ —सर्वधर्मान्—सब धर्मों को; परित्यज्य—छोड़कर; माम्—मुझको; एकम्—एक ही को; शरणम्—शरण में; व्रज—जा; अहम्—मैं; त्वा—तुझको; सर्वपापेभ्यः—सब पापों से; मोक्षयिष्यामि—छुड़ा दूँगा; मा—मत; शुचः—शोक कर ।

दामन—निकट; पनाह—शरण; ग़मगीं—शोक करना; मसरूर—आनन्दित ।

भावार्थ — सब अधर्मों को छोड़ कर तू केवल मेरी शरण में आ जा । तू दुःखी मत हो, मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूँगा ।

67. **इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।**
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ।।

यह राज़ उससे मत कह जो ज़ाहिद न हो,
यह राज़ उससे मत कह जो आबिद न हो ।
न उससे जो हो बद-ज़बाँ नुक्ता-चीं,
न उससे जो सुनने का ख़्वाहाँ नहीं ।।

शब्दार्थ –इदम्–यह; ते–तेरा, तुझे; न–नहीं; अतपस्काय–जो तपस्वी न हो उसको; अभक्ताय–अभक्त को; कदाचन–कदापि; च–और; अशुश्रूषवे–जो भक्तिरत न हो; वाच्यम्–बताना चाहिये; च–और; माम्–मुझको; यः–जो; अभ्यसूयति–द्वेष करता है ।

राज़–भेद; ज़ाहिद–तपस्वी; आबिद–उपासक; बद-ज़ुबाँ–अंटशंट बोलने वाला; नुक्ता-चीं–कटाक्ष करने वाला; ख्वाहाँ–इच्छुक ।

भावार्थ –यह गुह्यज्ञान उसको कभी भी न बताया जाये जो न तो संयमी हो, न एकनिष्ठ हो, न भक्ति में रत हो, न ही उसे जो मुझसे द्वेष करता हो ।

68. य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं पयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्संशयः ।।

मेरा भक्त होकर बा-इज्ज़-ओ न्याज़,
जो भक्तों से मेरे कहेगा यह राज़ ।
उन्हें सर-ए आली सिखा जायेगा,
वो बेशक मेरा वस्ल पा जायेगा ।।

शब्दार्थ –यः–जो; इमम्–इसको; परमम्–परम् श्रेष्ठ; गुह्यम्–रहस्य को; मद्भक्तेषु–भक्ति को; मयि–मुझमें; पराम्–श्रेष्ठ; कृत्वा–करके; माम्–मुझ को; एव–ही; एष्यति–प्राप्त करेगा; असंशयः–इसमें कोई संदेह नहीं ।

बा-इज़्म-ओ न्याज–विनम्रता एवं प्रेमपूर्वक; सर-ए आली–गीता शास्त्र से अभिप्राय है; वस्ल–दर्शन ।

भावार्थ –जो पुरुष मुझमें परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्त गीता शास्त्र को मेरे भक्तों में कहेगा, वह मुझ तक पहुँच जायेगा । इसमें कोई भी संदेह नहीं है ।

69. न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ।।

कहाँ उससे बढ़ कर है इन्साँ कोई,
करे ऐसी प्यारी जो सेवा मेरी ।
मुरव्वत की आँखों का तारा है वो,
मुझे सारी दुनियाँ से प्यारा है वो ।।

शब्दार्थ –न–नही; च–और; तस्मात्–उससे; मनुष्येषु–मनुष्यों में; कश्चित्–कोई भी; मे–मेरा; प्रियकृत्तमः–अत्यंत प्रिय; भविता–होगा; च–और; मे–मेरा; तस्माद्–उससे; अन्यः–दूसरा; प्रियतरः–अधिक प्रिय; भुवि–इस संसार में ।

मुरब्बत–स्नेहपात्र ।

भावार्थ –इस संसार में उसकी अपेक्षा कोई अन्य सेवक न मुझे अधिक प्रिय है और दूसरा भविष्य में होगा भी नहीं ।

70. अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ।।

पढ़ेगा जो कोई बरा-ए सबाब,
हमारे मुकद्दस सवाल-ओ जवाब ।
मैं समझूँगा उसने दिया ज्ञान-यज्ञ,
इबादत में मेरी किया ज्ञान यज्ञ ।।

शब्दार्थ –अध्येष्यते–अध्ययन करेगा; च–और; यः–जो; इमम्–इस; धर्म्यम्–धर्म-संगत; संवादम्–संवाद को; आवयो–हम दोनों के; ज्ञानयज्ञेन–ज्ञान के यज्ञ से; तेन–उससे; अहम्–मैं; इष्टः–पूजित, प्रिय; स्याम्–हूँगा; इति–इस प्रकार से; मे–मरी; मतिः–धारणा है ।

बरा-ए सबाब–पुण्य प्राप्ति के लिये; मुकद्दस–धर्मयुक्त; इबादत–पूजा ।

भावार्थ –और जो व्यक्ति हमारे इस संवाद रूप गीता शास्त्र का अध्ययन करेगा, मेरी यह धारणा है कि वह मेरी ज्ञानयज्ञ द्वारा पूजा कर रहा होगा ।

71. श्रद्धावाननसूयश्च् शृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ।।

फ़कत जो सुने रख के दिल में यकीं,
निकाले न ऐब और न हो नुक्ता-चीं ।
गुनाहों से वो मुखलसी पायेगा,
कि नेकों की दुनियाँ में आ जायेगा ।।

शब्दार्थ –श्रद्धावान्–श्रद्धा वाला; अनसूयः–द्वेषरहित; च–और; शृणुयात्–सुनता है; अपि–भी; यः–जो; नरः–मनुष्य; सः–वह; अपि–भी; मुक्तः–मुक्त हुआ; शुभान्–शुभ; लोकान्–लोकों को; प्राप्नुयात्–प्राप्त करे; पुण्यकर्मणाम्–पुण्यात्माओं का ।

फ़कत–केवलमात्र; यकीं–श्रद्धा; ऐब–अवगुण; नुक्ता-चीं–कटाक्ष करने वाला; गुनाहों–पापों; मुखलसी–निवृत्ति; नेकों की दुनियाँ–शुभ लोकों में ।

भावार्थ –और जो व्यक्ति श्रद्धायुक्त होकर, ईर्ष्यारहित होकर इस संवाद रूपी गीताशास्त्र को सुनेगा, वह सारे पापों से मुक्त हो जाता है और उन शुभ लोकों को प्राप्त होता है, जहाँ पुण्यात्माएँ निवास करती हैं ।

72. कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा ।
कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रणष्टस्ते धनंजय ।।

सुना तूने अर्जुन यह मेरा कलाम,
सुना तवा यक्सू से तूने तमाम ।
बता तेरे दिल से धनंजय कहीं,
फ़रेब-ए जहालत गया या नहीं ।।

शब्दार्थ –कच्चित्–क्या; एतत्–यह; श्रुतम्–सुना है; पार्थ–हे अर्जुन; त्वया–तूने; एकाग्रेण–एकाग्र; चेतसा–चित्त से; कच्चित्–क्या; अज्ञानसंमोहः–अज्ञान के कारण उत्पन्न मोह; प्रनष्टः–दूर हो गया है; ते–तेरा; धनंजय–हे अर्जुन ।

कलाम–वचन; तबा-यक्सू–एकाग्रचित; फ़रेब–धोखा; जहालत–अज्ञानता ।

भावार्थ – हे अर्जुन ! क्या तूने एकाग्रचित होकर तुमने गीता शास्त्र को सुना ? हे अर्जुन ! अज्ञान के कारण जो तुझे 'मोह' उत्पन्न हो गया था वह 'मोह' दूर हो गया है ।

73. नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ।।

पुकारा फिर अर्जुन कि ऐ लाइज़ाल,
हुआ दूर शक और फ़रेब-ए ख़्याल ।

पता चल गया दिल है मज़बूत अब,
बजा लाऊँगा आपके हुक्म सब ।।

शब्दार्थ –नष्टः–नष्ट हो गया है; मोहः–मोहः; स्मृतिः–स्मृति; लब्धा–प्राप्त की; त्वत्प्रसादात्–तेरी कृपा से; मया–मैंने; अच्युत–हे कृष्ण; स्थितः–स्थिर; अस्मि–हूँ; गतसन्देहः–मेरा सन्देह दूर हो गया है; करिष्ये–करूँगा; वचनम्–कथन; तव–तेरा ।

लाइज़ाल–अच्युत (कृष्ण); फ़रेब-ए ख़्याल–मन का धोखा ।

भावार्थ –हे कृष्ण ! तेरी कृपा से मेरा 'मोह' नष्ट हो गया है, मुझे स्मृति फिर प्राप्त हो गई है । अब मेरे सन्देह दूर हो गये हैं, मैं स्थिर-चित्त हो गया हूँ । अतः मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा ।

74. इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः ।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम् ।।

सुना मैंने श्रीकृष्ण ने जो कहा,
जो अर्जुन महा-आत्मा ने सुना ।
अजब-हैरत अंगेज थी गुफ़तगू,
खड़े हैं मेरे रौंगटे मू-बमू ।।

शब्दार्थ –इति–इस प्रकार; अहम्–मैं, मैंने; वासुदेवस्य–श्रीकृष्ण के; पार्थस्य–अर्जुन के; च–और; महात्मनः–महात्मा के; संवादम्–संवाद को; इमम्–इस; अश्रौषम्–सुना; अद्भुतम्–अद्भुत; रोमहर्षणम्–रोमांचत कर देने वाला ।

गुफ़तगू–संवाद; रोंगटे–रोमांच ।

भावार्थ –संजय बोले–इस प्रकार मैंने कृष्ण और अर्जुन इन दोनों महापुरुषों के बीच हुए इस रोमांचकारी अद्भुत संवाद को सुना । यह संदेश इतना अद्भूत है कि मेरे शरीर में रोमांच हो रहा है ।

75. व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम् ।।

सुना व्यास जी की दया से तमाम,
यह श्रीकृष्ण योग-ईश्वर का कलाम ।
खुद उनके लबों से सुना है सभी,
यही योग आली यह सर-ए ख़फ़ी ।।

शब्दार्थ —व्यासप्रसादात्—व्यास की कृपा से; श्रुतवान्—सुना है; एतत्—यह; गुह्यम्—गोपनीय; अहम्—मैंने; परम्—श्रेष्ठ; योगम्—योग को; योगेश्वरात्—योगेश्वर से; कृष्णात्—कृष्ण से; साक्षात्—साक्षात्-सामने, प्रत्यक्ष; कथयते—कहते हुए; स्वयम्—अपने-आप ।

कलाम—पवित्र वचन; लबों—मुखारविन्द; सर-ए सफी—परम गुह्य ।

भावार्थ —वेदव्यास जी की कृपा से दिव्य दृष्टि पाकर मैंने स्वयं इस परम गोपनीय रहस्यमय योग को साक्षात् स्वयं योगेश्वर कृष्ण द्वारा उपदेश दिये जाते हुए सुना ।

76. **राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम् ।**
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ।।

जो केशव से अर्जुन हुए हम कलाम,
अजब गुफ़तगू है मुकद्दस तमाम ।
उसे याद करता हूँ मैं बार-बार,
तो दिलशाद करता हूँ बार-बार ।।

शब्दार्थ —राजन्—हे राजन्; संस्मृत्य—स्मरण करके; संस्मृत्य—स्मरण करके; संवादम्—संवाद को; इमम्—इस; अद्भुतम्—अद्भुत; केशवार्जुनयोः—कृष्ण और अर्जुन के; पुण्यम्—पुण्य; हृष्यामि—प्रसन्न होता हूँ; च—और; मुहुर्मुहुः—बार-बार ।

हम-कलाम—संवाद; मुकद्दस—पावन; दिलशाद—हर्षित ।

भावार्थ —हे राजन् ! मैं कृष्ण और अर्जुन के बीच हुए इस अद्भुत और पुनीत संवाद को बार-बार स्मरण करके आनन्द से पुलकित हो उठता हूँ ।

77. **तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः ।**
विस्मयो मे महान्राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः ।।

हरि की हुई दीद मुझको नसीब,
मेरे सामने है वो सूरत अजीब ।
उसे याद करता हूँ मैं बार-बार,
तो दिलशाद करता हूँ मैं बार-बार ।।

शब्दार्थ –तत्–उसको; च–और; संस्मृत्य–स्मरण करके; संस्मृत्य–स्मरण करके; रूपम्–रूप को; अति–अधिक; अद्‌भुतम्–अद्‌भुत; हरेः–श्रीकृष्ण के; विस्मयः–आश्चर्य; मे–मुझको; महान्–महान्; राजन्–हे राजन्; हृष्यामि–हर्षित हो रहा हूँ; च–और; पुनः-पुनः–बार-बार।

दीद–दर्शन; नसीब–प्राप्त; अजीब–अद्‌भुत।

भावार्थ –हे राजन् श्री कृष्ण के उस अद्‌भुत रूप को स्मरण कर करके मुझे महान् विस्मय होता है, और मैं बार-बार हर्षित होता हूँ।

78. यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
यत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।

जिधर हैं कृष्ण मेहरबाँ, योगेश्वर हैं ख़ुद जहाँ,
जिधर है साहिब-ए कमाँ, वो अर्जुन जैसा पहलवाँ।
वहीं है शादकामियाँ वहीं हैं खुश इन्तज़ामियाँ,
वहीं हैं कामरानियाँ, वहीं हैं शादमानियाँ।।

शब्दार्थ –यत्र–जहाँ; योगेश्वरः–योग के स्वामी; कृष्णः–कृष्ण हैं; यत्र–जहाँ; पार्थः–अर्जुन; धनुर्धरः–धनुष को धारण करने वाला; तत्र–वहाँ; श्रीः–लक्ष्मी; विजयः–विजय; भूतिः–ऐश्वर्य; ध्रुवा–निश्छल; नीतिः–नीति; मतिः–धारणा, विचार, निश्चय; मम–मेरा।

साहिब-ए कमाँ–धनुर्धारी; पहलवाँ–शूरवीर; शादकामियाँ–लक्ष्मी; इन्तज़ामियाँ–अटल नीति; कामरानियाँ–विजय; शादमानियाँ–वृद्धि।

भावार्थ – हे राजन! जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण और जहाँ गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन हैं वहीं पर श्री विजय विभूति एवं अचल नीति है। ऐसा मेरा मत है।

गीताप्रश्नोत्तरी

प्रश्न 1. श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के लेखक कौन थे और यह किस ग्रंथ का भाग है?

उत्तर श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के लेखक महर्षि वेदव्यास थे और महाभारत के भीष्म पर्व 25वें अध्याय से 42वें अध्याय तक जो 18 अध्याय हैं उन्हें ही श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के नाम से पुकारा जाता है।

प्रश्न 2. गीता में कितने श्लोक हैं और किस-किस पात्र ने कितने कितने श्लोक बोले हैं?

उत्तर गीता में 700 श्लोक हैं और निम्नलिखित पात्रों ने निम्नलिखित श्लोक बोले हैं–

(1)	धृतराष्ट	1
(2)	संजय	41.5
(3)	अर्जुन	83.5
(4)	श्रीकृष्ण	574
	कुल	**700 श्लोक**

प्रश्न 3. गीता पर प्रथम भाष्य किसने लिखा था और इस पर सबसे अधिक भाष्य क्यों लिखे गये?

उत्तर आदिशंकराचार्य ने गीता पर सर्वप्रथम भाष्य लिखा था और इसके गुणों एवं महत्ता के कारण ही इस पर सब से अधिक भाष्य लिखे गये।

प्रश्न 4. गीता का सबसे छोटा और सबसे बड़ा अध्याय कौन सा है?

उत्तर गीता का 12वाँ और 15वाँ अध्याय सबसे छोटे हैं जिनमें में केवल 20-20 श्लोक हैं और सबसे बड़ा अध्याय 18वाँ अध्याय है जिसमें 78 श्लोक हैं।

प्रश्न 5. गीता में श्रीकृष्ण द्वारा प्रयुक्त 'मैं', 'मेरा', 'मुझे' आदि सर्वनामों के क्या अर्थ हैं?

उत्तर गीता में श्रीकृष्ण ने लगभग 300 बार 'मैं', 'मेरा', 'मुझे' आदि शब्दों का प्रयोग योगयुक्त अवस्था में अपने लिये न करके परमात्मतत्व का वर्णन किया है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वे स्वयं परमात्मा थे या परमात्मा के अवतार थे जैसे वैष्णव भाई

मानते हैं परन्तु वे महापुरुष थे जैसे गुरुदत्त लिखते हैं—

वहाँ श्रीकृष्ण ने कहा कि गीता का प्रवचन मैंने योगयुक्त अवस्था में किया था। उस समय मैं ऐसे कह रहा था जैसे मानो परमात्मा मुझ में बैठकर कह रहा हो।

इस प्रकार जहाँ-जहाँ श्रीकृष्ण ने 'मैं', 'मेरा', 'मुझे' इत्यादि शब्द प्रयोग किए हैं, वहाँ उसका अभिप्राय परमात्मा का ही है। अतः मेरे परायण का अर्थ ईश्वर के परायण समझना चाहिए।

—श्रीमद्भगवद्गीता पृ० 56

प्रश्न 6. कृष्ण एवं अर्जुन शब्दों के क्या-क्या अर्थ हैं?

उत्तर आकर्षक और शुद्ध।

प्रश्न 7. गीता में कौन-कौन से अध्याय प्रक्षिप्त (मिलावटी) हैं।

उत्तर गीता में 7, 10, 11, 12 अध्याय पूर्णतः प्रक्षिप्त हैं। इसके अतिरिक्त किसी अध्याय में 5 किसी में 10 श्लोक प्रक्षिप्त हैं। शेष गीता शुद्ध है। फिर भी यह ग्रंथ वैदिक वाङ्मय की अमूल्य निधि है।

प्रश्न 8. गीता में ओम् एवं योग शब्द कितनी बार प्रयुक्त हुए हैं?

उत्तर गीता में 7 बार ओम् एवं 84 बार योग शब्द प्रयुक्त हुये हैं।

प्रश्न 9. क्या गीता में कर्मयोग है या भक्तियोग है अथवा ज्ञानयोग है? अथवा यह एक समन्वयात्मक ग्रंथ है?

उत्तर गीता में कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग का सुन्दर समन्वय हुआ है। पहले 6 अध्यायों में कर्मयोग का, दूसरे 6 अध्यायों में भक्तियोग का और तीसरे 6 अध्यायों में ज्ञानयोग का प्राधान्य है। मानव जीवन की यात्रा के लिये तीनों का समन्वय आवश्यक है। अतः गीता एक समन्वयात्मक ग्रंथ है। गीता में कर्मयोग, ज्ञानयोग व भक्तियोग के क्या अर्थ हैं? कर्मयोग का अर्थ है—शरीर को संसार की निष्काम सेवा में समर्पित करना। ज्ञानयोग का अर्थ है—आत्मा में स्वयं को समर्पित कर देना और भक्तियोग का अर्थ है स्वयं को मन से परमात्मा में समर्पित कर देना। इन तीनों के पूर्ण हो जाने पर अभिमान का नाश हो जाता है। क्योंकि अहंकार का

गिरना ही आत्मसाक्षात्कार है। इसके विषय में डॉ० नरेन्द्र मदान लिखते हैं–

गीता में कर्म, भक्ति और ज्ञान की अलौकिक त्रिवेणी लहरा रही है। इसके पद-पद में अलौकिक अर्थ है। अनन्य भाव से इसका अध्ययन करने से मन के कपाट खुलते हैं।

अतः जगद्गुरु कृपालु जी महाराज लिखते हैं–

कर्म, ज्ञान अरु योग को जो भी फल श्रुति गाये।
अनायास बिनु माँगे, भगत सफल फल पाये।।

–भक्ति शतक (दोहा नं 64)

कर्म, ज्ञान और योग का जो भी फल शास्त्रों में बताया है वह सब बिना माँगे ही भक्ति से प्राप्त हो जाता है।

वस्तुतः कर्म के बिना ज्ञान असम्भव है। बिना ज्ञान के भक्ति अधूरी है और बिना भक्ति के ज्ञान लंगड़ा है। ये तीनों एक दूसरे के पूरक हैं। अतः जीवन में सफलता की प्राप्ति के लिये तीनों का सुन्दर समन्वय आवश्यक है। परन्तु कर्म स्थूल अहंकार है और ज्ञान सूक्ष्म अहंकार है और भक्ति निहंकार है। अतः कर्म की अनाशक्ति से, ज्ञान की समता से, भक्ति के समर्पण से इच्छा की व्याकुलता से, श्रद्धा की सेवा से, शक्ति की परिश्रम से, तप की त्याग से और दान की उदारता से परख होती है। अतः प्रभु अनुभूति केवल अनन्य भक्ति से ही होती है।

प्रश्न 10. प्रस्थानत्रयी का अर्थ स्पष्ट करके बताएं कि प्रस्थानत्रयी में कौन-कौन से ग्रंथ आते हैं?

उत्तर प्रस्थान शब्द का अर्थ है किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना। आध्यात्मिक जगत् में व्यक्ति का मुख्योद्देश्य आत्मा-परमात्मा की प्राप्ति या अनुभूति करना माना गया है। इस महान् कार्य की पूर्ति के लिये तीन ग्रंथ माने गये हैं–

(1) उपनिषद् (2) वेदांत दर्शन और (3) गीता।

इसके विपरीत आर्यसमाजियों की प्रस्थानत्रयी में भी अधोलिखित तीन ग्रंथ माने जाते हैं–

(1) सत्यार्थप्रकाश, (2) ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (3) संस्कार विधि।

प्रश्न 11. वह कौन सा वेदमंत्र है जिस पर सारी गीता आधारित है?

उत्तर यजुर्वेद के 40वें अध्याय के दूसरे मंत्र पर सारी गीता आधारित है।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषच्छेतꣳसमाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

इस संसार में निष्काम कर्मों के करते हुए भी मनुष्य को सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करनी चाहिये। यही एक साधन है जिसके द्वारा तुझ मनुष्य में कर्म लिप्त नहीं होंगे। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी उपाय नहीं है।

प्रश्न 12. गीता का अपना ही घड़ा हुआ शब्द कौन-सा है? और उस शब्द का अर्थ विस्तार से बताएं।

उत्तर कर्मयोग (निष्काम कर्म) शब्द गीता का अपना घड़ा हुआ है। मनुष्य की वृत्तियाँ त्रिगुणात्मक होती हैं उनके आधार पर उसका चिन्तन भी निम्नलिखित तीन प्रकार का होता है–

(1) तमोगुणी मनुष्य का चिन्तन होगा कि फल मिलेगा तो कर्म करूँगा। यदि फल नहीं मिलेगा तो कर्म ही नहीं करूँगा।

(2) रजोगुणी मनुष्य का चिन्तन होगा कि कर्म तो करूँगा किन्तु इसका फल अवश्य मिलना चाहिये जो कि उससे हाथ में नहीं है।

(3) सतोगुणी मनुष्य का विचार होता है कि कर्म करूँगा परन्तु फल परमेश्वर की व्यापकता के अनुसार जो भी मिलेगा वह उसे स्वीकार करेगा। यही कर्मयोग है। इसके विषय में स्वामी विवेकानन्द लिखते हैं–

गीता का केन्द्रीयभाव है कि निरंतर कर्म करते रहो, परन्तु उसमें आसक्त मत रहो।

प्रश्न 13. गीता के अनुसार स्थित प्रज्ञ व्यक्ति के क्या लक्षण हैं?

उत्तर स्थित प्रज्ञ व्यक्ति अपनी सारी इच्छाओं का त्याग कर देता है और बाहर के विषयों पर आश्रित न रहकर स्वयं में ही संतुष्ट रहने लगता है।

प्रश्न 14. ब्रह्मी स्थिति का क्या अर्थ है ?

उत्तर जो व्यक्ति वित्तैषणा, पुत्रैषणा एवं लोकैषणा पर विजय प्राप्त कर लेता है वही ब्रह्मी स्थिति को प्राप्त कर लेता है ।

प्रश्न 15. राग व द्वेष क्या है ?

उत्तर मनुष्य की आँखों का रूप है और जो सुरुप से राग हो जाता है और कुरुप से द्वेष । कानों के अच्छे एवं सुरीले शब्दों से राग हो जाता है और कटु शब्दों से द्वेष । अतः प्रत्येक विषय में राग-द्वेष छिपे हैं । राग का भाव है रुचि एवं द्वेष का भाव है अरुचि ।

प्रश्न 16. गीता के भक्ति, ज्ञान और कर्म शब्दों में क्या-क्या रहस्य छिपा है ?

उत्तर कर्म – अहंकार = भक्ति

कर्म + अहंकार = ज्ञान

ज्ञान + भक्ति = कर्म

यद्यपि व्यक्ति कर्म करने में स्वतंत्र है परन्तु उस स्वतंत्रता में भी परमेश्वर की न्यायव्यवस्था रूपी परतंत्रता निहित है । अभिमान एवं मोह माया की भावना से ग्रस्त मानव सदा अनेक प्रकार की चिन्ताओं में पड़ा रहता है ।

प्रश्न 17. गीता में कितने प्रकार के भक्तों का वर्णन है और कौन सा भक्त सर्वश्रेष्ठ भक्त माना गया है ?

उत्तर गीता में निम्नलिखित चार प्रकार के भक्तों का वर्णन है–

(1) आर्त्त – जो किसी दुःख के कारण परमात्मा से प्रार्थना करते हैं ।

(2) अर्थार्थी – जो धन एवं किसी स्वार्थपूर्ति के लिये परमात्मा से प्रार्थना करते हैं ।

(3) जिज्ञासु – जो केवल ज्ञान प्राप्ति के लिये परमात्मा से प्रार्थना करते हैं ।

(4) ज्ञानी – जो केवल प्रभु से निःस्वार्थ भाव से प्रार्थना करते हैं । क्योंकि उनकी कोई माँग नहीं होती । अतः वे ही प्रभु के सर्वश्रेष्ठ भक्त हैं ।

प्रश्न 18. गीता में श्रीकृष्ण का अर्जुन को अपना विराट् रूप दिखाने का क्या अर्थ है?

उत्तर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को भेद में अभेद, अनेकता में एकता, खण्डों में अखण्ड को दिखाना ही विराट् रूप दिखाया है जिसके कारण अर्जुन को चतुर्दिक भगवान् ही भगवान् दिखने लगे थे। यह पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, तारे, जगत् के जीव-जन्तु सब उसी का शरीर उसे दिखने लगा। उसकी आँखों के सामने एक विराट् पुरुष का रूप उठ खड़ा हुआ और हर एक वस्तु उसी शरीर का अंग दिखने लगी। इस प्रकार इस दिव्य दृष्टि से उसे यह नाना रूप जगत् ही पुरुष का जीवित शरीर दिखाई देने लगा। यही विराट् रूप का अर्थ है। श्रीराम आर्य अपनी पुस्तक ''गीता-विवेचन'' में लिखते हैं—

गीता का विश्वरूप दर्शन वाला ग्यारहवाँ अध्याय तो साक्षात् मैस्मरेज़म दिखाने वालों के समान बाजीगरों का सा खेल है, जो पात्र को सम्मोहित करके कलाकार उसे दिखाया करते हैं।

—गीता का देवतावाद और विश्वदर्शन रहस्य
(अध्याय 10 पृ० 135)

वस्तुतः गीता एक साम्प्रदायिक पुस्तक है जिसका मुख्योद्देश्य वैष्णव सम्प्रदाय की मान्यताओं की पुष्टि करके इस सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार करना और श्रीकृष्ण को ईश्वर का अवतार सिद्ध करना है जबकि ईश्वर का कोई अवतार नहीं होता।

प्रश्न 19. प्रकृति के तीनों गुण कौन-कौन से हैं और इन में किस-किस दैवी सम्पदा एवं विकारों का प्राधान्य है?

उत्तर प्रकृति के तीन गुण हैं—सत्व, रज और तम। इनको वैदिक भाषा में आपः के नाम से पुकारा जाता है। सतोगुण में ज्ञान, रजोगुण में लोभ व काम और तमोगुण में आलस्य व मोह-ममता का प्राधान्य होता है।

प्रश्न 20. गीता में शरीर और आत्मा को किस नाम से पुकारा गया है?

उत्तर क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ।

प्रश्न 21. ''अश्वत्थ'' शब्द का क्या अर्थ है? इसकी कौन-कौन सी शाखाएँ एवं कोंपलें हैं?

उत्तर अश्वत्थ का अर्थ है– अ=नहीं, श्व= कल, स्थ=स्थिर रहने वाला अर्थात् जिसका कल तक भी ठहरने का कोई भरोसा न हो। यह शब्द प्रकृति का प्रतीक है जोकि परिवर्तनशील व अनादि है। यह इसलिये अव्यय भी है। प्रकृति रूपी वृक्ष की शाखाएँ हैं–महत्, अहंकार, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच महाभूत, पाँच तन्मात्राएँ और मन। इन शाखाओं की कोंपलें हैं –शब्द, रस, रूप, स्पर्श और गंध।

प्रश्न 22. दैवी सम्पदा एवं आसुरी सम्पदा में कौन-कौन से गुण एवं दोष आते हैं?

उत्तर दैवी सम्पदा के गुण हैं–निडरता, मन की शुद्धता, दान देने की प्रवृत्ति, तप, त्याग आदि।

आसुरी सम्पदा के दोष–पाखंड, क्रोध, कठोरता, अभिमान आदि।

प्रश्न 23. कर्म के पाँच विभिन्न कारण कौन-कौन से हैं?

उत्तर कर्म के पाँच विभिन्न कारण ये हैं–

(1) आधार (अधिष्ठान), (2) कर्ता, (3) साधन (इन्द्रियाँ या करण), (4) प्रयत्न, (5) दैव (भाग्य)।

प्रश्न 24. गीता का शुभारम्भ एवं इति जिन-जिन शब्दों से हुई है और उनका क्या सार है?

उत्तर गीता का शुभारम्भ 'धर्म' और 'इति' मम शब्दों से हुई है। इसका सार है कि मेरा क्या धर्म है। जैसे–

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय।। 1.1

कुरुक्षेत्र की धर्मभूमि पे जब,
मिले पाण्डवों से मेरे लाल सब।
लड़ाई का दिल में जमाये ख़्याल,
तो संजय बता उनका सब हाल-चाल।।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
यत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ।। 18.78

जिधर हैं कृष्ण मेहरबाँ, योगेश्वर हैं ख़ुद जहाँ,
जिधर है साहिब-ए कमाँ, वो अर्जुन जैसा पहलवाँ ।
वहीं है शादकामियाँ वहीं हैं खुश इन्तज़ामियाँ,
वहीं हैं कामरानियाँ, वहीं हैं शादमानियाँ ।।

प्रश्न 25. गीता का सार क्या है ?

उत्तर वेदों का सार उपनिषदें हैं, उपनिषदों का सार गीता है, गीता का सार गीता के अठारहवें अध्याय का 66वां श्लोक है और इस श्लोक का सार शरणागति है कि सब अधर्मों को छोड़ कर मेरी तरह परमात्मा की शरण में आ जा । जैसे एक हिन्दी कवि शब्दों में–

जाने क्या जादू भरा हुआ, भगवान् तुम्हारी गीता में,
श्रीकृष्ण तुम्हारी गीता में, भगवान् तुम्हारी गीता में,
मन चमन हमारा हरा हुआ, श्रीकृष्ण तुम्हारी गीता में ।
जब शोक मोह से घिर जाए तब गीता वचन हृदय गावे,
युग-युग का अनुभव जुबड़ा हुआ, भगवान् तुम्हारी गीता में,
गीता संतों को प्यारी है, श्रुति वेदों के अनुसारी है,
सारा भवसागर तरा हुआ, श्रीकृष्ण तुम्हारी गीता में,
अर्जुन को जब भव मोह हुआ, तब गीता ज्ञान सुना डाला ।
उपनिषद् का रस भरा हुआ, श्रीकृष्ण तुम्हारी गीता में ।

सहायक पुस्तकों की सूची

	ग्रंथ का नाम	लेखक
1.	गीता तत्त्व विवेचनी	श्री जयदयाल गोयन्दका
2.	श्रीमद्भगवद्गीता (भाग I-III)	आचार्य सुधांशु जी महाराज
3.	श्रीमद्भगवद् गीता	डॉ० सत्यव्रत सिद्धालंकार
4.	श्रीमद्भगवद् गीता यथारूप	स्वामी प्रभुपाद
5.	गीता विवेचन	डॉ० श्रीराम आर्य
6.	श्रीमद्भगवद्गीता	स्वामी गीतानंद जी महाराज
7.	दिल की गीता (उर्दू भाषा)	ख्वाजादिल मुहम्मद
8.	गीता प्रवचन	विनोबा भावे
9.	श्रीमद्भगवद्गीता 1001 प्रश्नोत्तर	आचार्य भगवान् देव
10.	गीता तत्त्वबोध	ब्रह्मर्षि विश्वात्मा बावरा
11.	योगेश्वर कृष्ण	पं० चमूपति जी एम०ए०
12.	श्रीमद्भगवद् गीता	आदि शंकराचार्य
13.	श्रीमद्भगवद् गीता गीतामृत	स्वामी रामदेव
14.	प्राचीन भगवद्गीता	स्वामी मंगलानंद
15.	अष्टावक्र गीता	श्री नंदलाल दशोरा
16.	श्री ज्ञानेश्वरी	संत ज्ञानेश्वर जी
17.	वैदिक गीता	पंडित आर्यमुनि जी
18.	श्री मद्भगवद् गीता	श्री रामशंकर तिवारी
19.	गीता रहस्य (भाग-I-II)	लोकमान्य तिलक
20.	श्रीमद्भगवद्गीता (भाग I-X)	स्वामी रामसुखदास
21.	गीता दर्शन (भाग-I-VIII)	ओशो
22.	Essay on Gita (Vol. I-XII)	Maharishi Arbindo Gosh
23.	The Bhagavad Gita (Vol. I-II)	Paramahansa Yogarvinda
24.	The Bhagavad Gita	Swami Childbhananda
25.	The Bhagvada Gita	Swami Sivananda

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेर-ओ-शायरी

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक उपनिषद्वाणी
2. वैदिक दर्शनवाणी
3. वैदिक महाभारत
4. वैदिक गीता
5. अमर धर्मग्रंथ
6. अमर नीतिग्रंथ
7. पुराणपरिचय
8. ईश्वरसिद्धि
9. राष्ट्रभाषा हिन्दी
10. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
11. महावीर हनुमान
12. योगिराज श्रीकृष्ण
13. आदिशंकराचार्य
14. आचार्य चाणक्य
15. दस गुरु
16. आर्यसमाज के महामानव
17. स्वामी रामतीर्थ
18. संस्कार
19. गीतांजलि
20. आर्यसमाज
21. ओ३म्
22. गायत्रीरहस्य
23. ज्ञानामृत
24. यज्ञ
25. संत
26. संतवाणी
27. सामान्य हिन्दी (भाग I-II)
    (सब कक्षाओं के लिये)
28. **Great Thoughts**
29. **General English (Part I to V)**
    (For All Classes)